# तृतीय अध्याय

# ‘रामचरितमानस’ में रामभक्ति का स्वरूप

## 3.1 प्रस्तावना

पौराणिक साहित्य में एक प्रसंग आता है जिसमें नारद ऋषि भ्रमण करते हुए भक्ति देवी तथा उनके दोनों पुत्र ज्ञान और वैराग्य से मिलते हैं। नारद भक्ति देवी को जवान तथा उनके दोनों पुत्रों ज्ञान और वैराग्य को वृद्ध रूप में देखकर आश्चर्य चकित हो जाते हैं कि माँ बूढ़ीतथा पुत्र जवान कैसे हो गये हैं। तत्पश्चात् भगवद्भक्ति कथा के श्रवण मात्र से ज्ञान और वैराग्य पुनः जवान हो उठते हैं। इस प्रकार भक्ति को ज्ञान और वैराग्य आदि से श्रेष्ठ माना गया है। ज्ञान और वैराग्य की तुलना में भक्ति ही भगवद्प्राप्ति का सरल मार्ग है। प्राणी कितनी ही ज्ञान राशी अर्जित क्यों न कर ले तथा कितना ही वैरागी क्यों न हो जाए परंतु भगवान की कृपा की प्राप्ति भक्ति के बिना दुर्लभ है। इसी कारण बड़े-बड़े महात्माओं ने भी भक्ति की महिमा गायी है। 'रामचरितमानस'में रामभक्ति के स्वरूप विषय पर विचार करने के लिए भक्ति क्या है? किसकी भक्ति आवश्यक है?, भक्ति के साधन तथा स्वरूप क्या हैं? तथा रामभक्ति के विषय में जानना आवश्यक है। अतः मैंने यहाँ निम्न उपशीर्षकों तथा बिंदुओं के माध्यम से विचार प्रस्तुत किया है। उन विषयों का क्रमानुसार वर्णन इस प्रकार है-

## 3.2 'भक्ति' शब्द की व्याख्या

'भक्ति' शब्द की व्याख्या प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक विभिन्न विद्वानों, ग्रंथों तथा लेखों द्वारा किया जाता आ रहा है। 'भक्ति'शब्द की व्याख्या बारंबार विभिन्न-विभिन्न युगों तथा कालों में किया जाना इस बात को प्रमाणित करता है कि इसकी आवश्यकता मानव जीवन में अधिक है। 'भक्ति'भगवद्प्राप्ति का मूलमंत्र है। 'भक्ति'के बिना आध्यात्मिक उन्नति की कल्पना भी नहीं की जा सकती। डॉ. पी. जयरामन अपनी कृति 'भक्ति के आयाम' में लिखते हैं-

> अन्तर्मन की अनेकों प्रवृत्तियों का भगवान के साथ भावात्मक संबंध होने पर ही भक्ति का प्रादुर्भाव होता है । नवधा भक्ति हृदय को भक्ति की ओर उत्प्रेरित करती है ।(जयरामन 2003:411)

भक्ति की व्याख्या तथा भक्त हृदय की दैन्यता और भक्ति भावना का विकास अनेक महान् भक्तों तथा आचार्यों की वाणी में अवश्य ही देखने को मिलता है । भक्त का हृदय सदैव अपने भगवान की प्रेमा भक्ति तथा सेवा में लीन रहना चाहता है । भक्ति शब्द की व्याख्या 'हिंदी शब्द कोश'में कुछ इस प्रकार से किया गया है-

> अलौकिक सत्ता के प्रति होनेवाला विशेषप्रेम, जो नौ प्रकार का मानागया हैऔर इसीलिए जिसे नवधा भक्तिकहते हैं, यथा-श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वंदन, दास्य, सख्यऔर आत्मनिवेदन।(वर्मा 2014:698)

'लोकभारती बृहत प्रामाणिक हिंदी कोश'के अनुसार ईश्वर या अपने आराध्य के प्रति विशेष प्रेम को भक्ति कहते हैं, जो कि नौ प्रकार से किया जाता है । यथा,- श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वंदन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन रूप में । 'लोकभारती बृहत प्रामाणिक हिंदी कोश'लगभग पचास से पचपन वर्ष पुराना है । अर्थात् आचार्य रामचंद्र वर्मा ने इस कोश को पचास-पचपन वर्ष पूर्व संपादित किया था । परंतु ध्यान से विचार करने पर यह व्याख्या हमें बहुत प्राचीन काल में ही देखने को मिल जाती है । बहुत काल पहले देवर्षी नारद से ज्ञान प्राप्त कर प्रह्लाद ने अपने पिता को नवधा भक्ति के विषय में बताया था ।

ग्रंथराज 'श्रीमद्भागवतम''में इसका प्रामाणिक उल्लेख हमें देखने को मिलता है । 'श्रीमद्भागवतम' के साँतवें स्कन्ध में पाँचवें अध्याय के तेइसवें श्लोक में इसका स्पष्ट उल्लेख हुआ है । प्रह्लाद महाराज अपने पिता से

कहते हैं कि भगवान् विष्णु के दिव्य पवित्र नाम, रूप, साज-सामान तथा लीलाओं के विषय में सुनना तथा कीर्तन करना, उन परम पुरुषोत्तम भगवान का स्मरण करना,उनके चरणकमलों की नित्य सेवा करना, षोडशोपचार विधि अर्थात पूजन के ये सोलह अंग- आवाहन, आसन, अर्घ्यपाद्य, आचमन, मधुपर्क, धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल, परिक्रमा तथा वंदना द्वारा भगवान् की सादर पूजा करना, भगवान से प्रार्थना करना, उनका दास बनना, भगवान को सर्वश्रेष्ठ मित्र के रूप में मानना तथा उन्हें अपना सर्वस्व न्योछावर करना(अर्थात् मनसा, वाचा, कर्मणा उनकी सेवा करना)-शुद्ध भक्ति की ये नौ विधियाँ स्वीकार की गई हैं। अतः जिस किसी ने भी इन नौ विधियों द्वारा भगवान  की सेवा में अपना जीवन अर्पित कर दिया है उसे ही सर्वाधिक विद्वान व्यक्ति मानना चाहिए, क्योंकि उसने पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया है-

श्रवणंकीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् ।

अर्चनं वंदनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ।।

इति पूंसार्पिता विष्णौ भक्तिश्चेन्नवलक्षणा ।

क्रियेत भगवत्यद्धा तन्मन्येधीतमुत्तमम् ।।(प्रभुपाद, सप्तम स्कंध 2018:204)

बालक प्रह्लाद अपने पिता हिरण्यकशिपु को भक्ति का यह गूढ़ रहस्य बताते हैं। यहाँ कितनी सुंदरता से उन नौ विधियों की वर्णना की गई है जिसका लक्ष्य भगवान की शरणागति है, भगवद प्राप्ति है। ये नौ विधियाँ भक्ति के वे साधन हैं जिसके माध्यम से एक भक्त अपने आराध्य को प्राप्त कर सकता है।

भक्ति की  यह व्याख्या केवल 'भागवतम्'तक ही सीमित नहीं रही । आगे भी महान लेखकों तथा भक्तों के माध्यम से वर्णित होती रही है । भक्ति के लक्षणों तथा सिद्धांतों की व्याख्या करने वाले महान लेखक तथा भक्ति योग के विज्ञान के ज्ञाता महान भक्त श्रील रूप गोस्वामी द्वारा रचित महान भक्ति ग्रंथ 'भक्तिरसामृतसिंधु'में भी भक्ति के विज्ञान की चर्चा करते हुए तथा भक्ति के लक्षणों को उजागर करते हुए 'भक्ति'का अर्थ प्रतिपादित कर वे उक्त ग्रंथ में कहते हैं कि 'भक्ति' का अर्थ ही है समस्त इंद्रियों के स्वामी, पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की सेवा में अपनी सारी इंद्रियों को लगाना । जब आत्मा भगवान् की सेवा करता है, तो उसके दो गौण प्रभाव होते हैं । मनुष्यसारी भौतिक उपाधियों से मुक्त हो जाता है और भगवान की सेवा में लगे रहने मात्र से उसकी इंद्रियाँ भी शुद्ध हो जाती हैं-

सर्वोपाधि-विनिर्मुक्तं तत्परत्वेन निर्मलम् ।

हृषीकेण हृषीकेश-सेवनं भक्तिरूच्यते ।।(प्रभुपाद, सप्तम स्कंध 2018:367)

श्रील रूप गोस्वामी प्रभुपाद आगे लिखते हुए कहते हैं-

श्री-विष्णोः श्रवणे परीक्षिदभवद्वैयासकिः कीर्तने

प्रह्लादः स्मरणेतदङ्घ्रि-भजने लक्ष्मीः पृथुःपूजने ।

अक्रुरस्त्वभिवंदने कपिपतिर्दास्येथ सख्येर्जुनः

सर्वस्वात्म-निवेदने बलिरभूत्कृष्णाप्तिरेषां परा ।।(प्रभुपाद, सप्तम स्कंध 2018:371)

प्रथम श्लोक में श्रील रूप गोस्वामी भक्ति का अर्थ बताते हुए कहते हैं कि समस्त इंद्रियों के स्वामी पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान की सेवा करना ही भक्ति का अर्थ है या चरम उद्देश्य है । द्वितीय श्लोक में राजा परीक्षित की

शरणागति, या श्रवण के माध्यम से भगवत् प्राप्ति का, शुकदेव गोस्वामी का भगवान की कथा कहकर, प्रह्लाद का भगवान को स्मरण करके, लक्ष्मी द्वारा चरण सेवा करके, पृथु महाराज का पूजन के माध्यम से, अक्रुर जी द्वारा स्तुति करके, हनुमान की सेवा तथा बलि महाराज द्वारा भगवान के चरणों में अपना सर्वस्व न्योछावर करके भक्ति की पूर्णता प्राप्त करने की बात बताते हुए नवधा भक्ति की ही व्याख्या करते हैं। इसका प्रमाण उनके आगे के कथन से प्राप्त होता है जहाँ लेखक श्रील रूप गोस्वामी कहते हैंअर्थात् यहाँ भक्त श्रील रूप गोस्वामी अपने आराध्य से कहते हैं कि न तो उनमें भगवान के लिए प्रेम है, न ही उनमें कीर्तन तथा श्रवण द्वारा भक्ति करने की योग्यता ही है। न ही उनमें वैष्णव की योगशक्ति, ज्ञान या पुण्यकर्म है, न ही वे उच्च कुल से संबंधित हैं। इस तरह उनमें कुछ भी विशेषता नहीं है। फिर भी वे गोपियों के प्रिय भगवान से अपने हृदय की आशा व्यक्त करते हुए निवेदन करते हैं कि वे अधम से अधम पर भी दया करनेवाले हैं। वही आशा उनके अंदर भी निरंतर पीड़ा दे रही है-

न प्रेमा श्रवणादि-भक्तिरपि वा योगोथ वा वैष्णवो।

ज्ञानं वा शुभकर्म वा कियदहो सज्जातिरप्यस्तिवा।

हीनार्थाधिकसाधके त्वयि तथाप्यच्छेद्य-मूला सती।

हे गोपीजनवल्लभ व्यथयते हा हा मदाशैव माम्।।(प्रभुपाद, सप्तम स्कंध 2018:372)

उक्त कथन के प्रथम पंक्ति में लेखक श्रील रूप गोस्वामी अपने हृदय में भगवन नाम-कीर्तन तथा श्रवणादि के गुण न होने का दुःख कर रहे हैं। अतः यहाँ पर लेखक श्रील रूप गोस्वामी नवधा भक्ति की बात कह रहे हैं।

श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी विरचित चैतन्य महाप्रभू की दिव्य लीलाओं पर रचित 'श्रीचैतन्य चरितामृत'पुस्तक के मध्य लीला श्लोक में इसी भक्तिलता के विषय में कहा गया है कि भक्ति का बीज प्राप्त होने पर उसे माली की तरह उस बीज को अपने हृदय में सींचना चाहिए । यदि व्यक्ति बीज को श्रवण विधि से सींचता रहेगातब वह विकसित होगा-

माली हञा करे सेइ बीज आरोपण ।

श्रवण-कीर्तन-जले करये सेचन ।।

(गोस्वामी और प्रभुपाद, श्रीचैतन्य-चरितामृत- मध्य लीला-भाग-2 2013:332)

अतः यहाँ भी श्रवण-कीर्तन आदि के विषय में कहा गया है ।

'नारद-भक्ति-सूत्र'में नारद के भक्ति सूत्र के प्रथम श्लोक का वर्णन करते हुए लिखा है कि भक्तिमय सेवा परमोत्कृष्ट शुद्ध भगवत्प्रेम के रूप में प्रकाशित होती है-

सा त्वस्मिन् परमप्रेमरूपा ।।

(गोस्वामी और प्रभुपाद, श्रीचैतन्य-चरितामृत- मध्य लीला-भाग-2 2013:22)

यहाँ भगवान की भक्तिमयी सेवा की बात कही गयी है । आगे नारद भी कहते हैं कि भगवत्प्रेम में भक्तिमय सेवा की पद्धति को पूर्णतः जाननेवाला उसके प्रतिपादन में उन्मत्त हो जाता है । कभी-कभी वह भावानंद में स्तब्ध हो जाता है एवं इस प्रकार परमात्मा की सेवा में संलग्न हुआ वह अपनी आत्मा में रमण करता है-

यज्ज्ञात्वा मत्तो भवति स्तब्धो भवत्यात्मारामो भवति ।।(प्रभुपाद, नारद-भक्ति-सूत्र 2015:04)

अतः भक्तिमय सेवा के माध्यम से भगवान की प्राप्ति संभव हो पाती है।

'श्रीमद्भागवतम्' के द्वितीय स्कंधमें श्री शुकदेव गोस्वामी अर्जुन को बताते हैं कि जो समस्त कष्टों से मुक्त होने का इच्छुक है, उसे उन भगवान् का श्रवण, महिमा-गायन तथा स्मरण करना चाहिए जो परमात्मा, नियंता तथा समस्त कष्टों से रक्षा करनेवाले हैं-

तस्माद्भारत सर्वात्मा भगवानीश्वरो हरिः।

श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च स्मर्तव्यश्चेच्छताभयम् ।।

(प्रभुपाद, श्रीमद्भागवतम्, द्वितीय स्कंध 2018:08)

यहाँ पर शुकदेव गोस्वामी महाराज परीक्षित को उनके प्रश्नों का उत्तर देते हुए कहते हैं कि अगर परमगति की प्राप्ति की इच्छा है तो भगवान के श्रवण-कीर्तन आदि में ध्यान देकर उनकी सेवा करनी चाहिए।

यही बात भगवान स्वयं विभिन्न अवतारों में अनेकों बार करते हैं। 'श्रीमद्भागवतम्'के एकादश स्कंध-भाग-2 में भी कहा गया है कि जो व्यक्ति सारे सकाम कर्मों को त्याग देता है और उन भगवान की सेवा करने की तीव्र उत्कंठा से स्वयं को पूरी तरह उनको ही सौंप देता है, वह जन्म-मृत्यु से मोक्ष पा लेता है और उन भगवान के ऐश्वर्य के भागी के पद पर उन्नत हो जाता है-

मर्त्यो यदा त्यक्तसमस्तकर्मा

निवेदितात्मा विचिकीर्षितो मे।

तदामृतत्वं प्रतिपाद्यमानो

मयात्मभूयाय च कल्पते वै ।।

(प्रभुपाद, श्रीमद्भागवतम्, एकादश स्कंध, भाग-2 2018:568)

अतः यहाँ स्वयं भगवान अपने भक्तों को दिव्य सेवा भक्ति से उनकी प्राप्ति का सरल मार्ग बता रहे हैं ।

'श्रीमद्भगवद्गीता'में भी यह बात पुनः भगवान स्वयं कहते हैं कि केवल भक्ति से ही उन भगवान को यथारूप में जाना जा सकता है । जब मनुष्य ऐसी भक्ति से उनमें पूर्ण भावनामृत में होता है, तो वह वैकुंठ जगत में प्रवेश कर सकता है । इसका भी उदाहरण द्रष्टव्य है-

भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः ।

ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनंतरम् ।।(प्रभुपाद, श्रीमद्भागवतगीता यथारूप 2011:546)

अतः यहाँ भी भगवान भक्ति की महिमा द्वारा उनकी प्राप्ति की बात बताते हैं ।

'नारद-भक्ति-सूत्र'में नारद विभिन्न महात्माओं तथाआचार्यों की भक्ति पद्धति की व्याख्या करते हैं । उनमें से कुछ ने भक्ति की परिभाषा स्वरूप जो कुछ कहा है, उनका वर्णन यहाँ करना भी आवश्यक है । 'नारद-भक्ति-सूत्र'के द्वितीय अध्याय में 26 वें सूत्र में पराशर मुनि के पुत्र श्रील व्यासदेव की उक्ति की व्याख्या की गई है, जो इस प्रकार है-

पूजादिष्वनुराग इति पाराशर्यः ।।(प्रभुपाद, नारद-भक्ति-सूत्र 2015:38)

यहाँ पराशर मुनि के पुत्रश्रील व्यासदेव कहते हैं कि भक्ति विभिन्न प्रकार के भगवद्-पूजन में अनुराग है।

इस प्रकार से विभिन्न ग्रंथों आदि में हमने भक्ति की व्याख्या देखी । अब हिंदी साहित्य जगत् के महान आलोचक आचार्य रामचंद्र शुक्ल की भक्ति विषयक धारणा पर प्रकाश डालने का प्रयत्न करेंगे । आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'चिंतामणि'में शुद्ध भक्ति की विवेचना करते हुए भक्ति की व्याख्या भी की है । भक्ति की व्याख्या करते हुए वे कहते हैं-

> श्रद्धा और प्रेम के योग का नाम भक्ति है । जब पूज्यभाव की वृद्धि के साथ श्रद्धा-भाजन के सामीप्य-लाभ की प्रवृत्ति हो, उसकी सत्ता के कई रूपों के साक्षात्कार की वासना हो, तब हृदय में भक्ति का प्रादुर्भाव समझना चाहिए ।(शुक्ल, चिंतामणि 2015:20)

शुक्ल जी आगे भक्ति-विधान के ऊपर चर्चा करते हुए कहते हैं-

> जब श्रद्धेय के दर्शन, श्रवण, कीर्तन, ध्यान आदि से आनंद का अनुभव होनेलग-जब उससे संबंध रखनेवाले श्रद्धा के विषयों के अतिरिक्त बातों की ओर भी मन आकर्षित होने लगे, तब भक्तिरस का संचार समझना चाहिए ।(शुक्ल, चिंतामणि 2015:20)

उपरोक्त प्रमाणों तथा व्याख्याओं के आधार पर यह निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि 'भक्ति का अर्थ है विशेष प्रेम या श्रद्धा । जब अपने आराध्य के प्रति विशेष प्रेम, अनुराग उत्पन्न हो जाए तथा उस अनुराग और प्रेम के कारण उनकी दिव्य प्रेममयी सेवा करने का मन करे तो उसे भक्ति समझना चाहिए । ध्यान देने की बात है कि यह सेवा भौतिक इच्छाओं से रहित होती है तथा जिसमें पूर्ण आनंद की प्राप्ति होती है । यह दिव्य प्रेममयी सेवा करने की नौ विधियाँ बतायी गई हैं जिन्हें नवधा भक्ति कहते हैं । इन सेवा की विधियों का या इनमें से किसी

एक के प्रेमपूर्वक पालन से भक्ति तथा भगवान के कृपा की प्राप्ति संभव है। जैसे हनुमान की निष्काम सेवा तथा दास्यभावना, अर्जुन का सख्य भाव, सूरदास का सख्य भाव, राजाबलि का सर्वस्व समर्पण करने की भावना, अक्रूरजी द्वारा स्तुति करना तथा शुकदेव गोस्वामी द्वारा भागवत कथा कहना और परीक्षित द्वारा सुनने की एक विधि से ही उन्हें परम गति प्राप्त हुई थी। अतः कहा जा सकता है कि 'भक्ति'का सीधा अर्थ भगवान की प्रेममयी सेवा अथवा उसमें अनुराग का होना है।

शुद्ध भक्तिमयी सेवा का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण हर युग में हमें देखने को मिलता है। 'श्रीमद्भागवतम्' में राजा अंबरीश की स्थिति ऐसी ही है जिसका वर्णन शुकदेव गोस्वामी राजा परीक्षित को सुनाते हुए कहते हैं कि महाराज अंबरीष सदैव अपने मन को कृष्ण के चरणकमलों का ध्यान करने में, अपने शब्दों को भगवान् का गुणगान करने में, अपने हाथों को भगवान् का मंदिर झाड़ने-बुहारने में तथा अपने कानों को कृष्ण द्वारा या कृष्ण के विषय में कहे गये शब्दों को सुनने में लगाते रहे। वे अपनी आँखों को कृष्ण के अर्चाविग्रह, कृष्ण के मंदिर तथा कृष्ण के स्थानों- मथुरा तथा वृंदावन को देखने में लगाते रहे। वे अपनी सारी इंद्रियों को भगवान् से संबन्धित भक्ति के कार्यों में लगाते रहे। भगवान् के प्रति अनुराग बढ़ाने की और समस्त भौतिक इच्छाओं से पूर्णतः मुक्त होने की यही विधि है-

स वै मनः कृष्णपदारविंदयो-

र्वचांसि वैकुंठगुणानुवर्णने।

करौ हरेमंदिरमार्जनादिषु

श्रुतिं चकराच्युतसत्कथोदये ।।

मुकुंदलिंगालयदर्शने दृशौ

तद्भृत्यगात्रस्पर्शेंगसंगमम् ।

घ्राणं च तत्पादसरोजसौरभे

श्रीमत्तुलस्या रसनां तदर्पिते ।।(प्रभुपाद, श्रीमद्भागवतम्, नवम स्कंध 2018:64)

'रामचरितमानस' के अयोध्याकाण्ड में तुलसीदास ने 'श्रीमद्भागवतम्' के इस कथन की व्याख्या करते हुए वाल्मीकि ऋषी द्वारा व्यक्त किया है। राम द्वारा वन प्रदेश में अपने निवास करने योग्य स्थान के बारे में पूछे जाने पर ऋषि राम से अनन्य भक्ति भाव से कहते हैं कि जिनके कान समुद्र की भाँति राम की सुन्दर कथा रूपी अनेकों सुन्दर नदियों से निरंतर भरते रहते हैं, परन्तु कभी तृप्त नहीं होते, ऐसे मनुष्यों का हृदय ही आपके लिये सुन्दर घर हैं। अतः वहीं निवास करें। जो चातक की भांति राम के दर्शनरूपी मेघ के लिये सदा लालायित रहते हैं; तथा जो नदियों समुद्रों और झीलों का निरादर करते हैं और राम के सौंदर्य सम मेघ के एक बूँद जल से सुखी हो जाते हैं, उन लोगों के हृदय में लक्ष्मण और सीताजी सहित निवास करें। राम के यश रूपी निर्मल मानसरोवर में जिसकी जीभ हंसिनी बनी हुई राम के गुण सममूहरुपी मोतियों को चुगती रहती हैं, उसका हृदय ही राम-सीता-लक्ष्मण के बसने योग्य है। जिसकी नासिका राम के लिए समर्पित पवित्र और सुगंधित पुष्प को नित्य आदर के साथ ग्रहण कर के सूँघता है और जो राम को अर्पण करके ही भोजन करता है और राम के प्रसाद रूप ही वस्त्र और आभूषण धारण करता है, जिनका मस्तक देवता, गुरु और ब्राह्मणों को देखकर बड़ी नम्रता के साथ प्रेमसहित झुक जाता है, जिनके हाथ नित्य राम के चरणों की पूजा करते हैं और जिनके हृदय में एक राम का ही भरोसा है, दूसरा नहीं; तथा जिनके चरन राम के तीर्थों तथा मंदिरों में चलकर जाते हैं; उनके मन में ही

राम निवास करें। जो नित्य 'राम' नाम के महामन्त्र को रोज जपता है और परिवार सहित राम की पूजा करता है, उनके हृदय में ही राम बसें-

सुनहु राम अब कहऊँ निकेता। जहाँ बसहु सिय लखन समेता ।।

जिन्ह के श्रवण समुद्र समाना। कथा तुम्हारि सुभग सरि नाना ।।

भरहिं निरंतर होहिं न पूरे। तिन्ह के हिय तुम्ह कहूँ गृह रूरे ।।

लोचन चातक जिन्ह करि राखे। रहहिं दरस जलधर अभिलाषे ॥

निदरहिं सरित सिंधु सर भारी। रूप बिंदु जल होहिं सुखारी ॥

तिन्ह के हृदय सदन सुखदायक। बसहु बंधु सिय सह रघुनायक ॥

जसु तुम्हार मानस बिमल हंसिनि जीहा जासु।

मुकताहल गुन गन चुनइ राम बसहु हियं तासु ॥

प्रभु प्रसाद सुचि सुभग सुबासा। सादर जासु लहइ नित नासा ॥

तुम्हहि निबेदित भोजन करहीं। प्रभु प्रसाद पट भूषण धरहीं ॥

सीस नवहिं सुर गुर द्विज देखि। प्रीति सहित करि बिनय बिसेषी ॥

कर नित करहिं राम पद पूजा। राम भरोस हृदयं नहिं दूजा ॥

चरन राम तीरथ चलि जाहीं। राम बसहु तिन्ह के मन माहीं ॥

मंत्रराजु नित जपहिं तुम्हारा। पूजहिं तुम्हहि सहित परिवारा ॥(तुलसीदास 2015:450)

## 3.3 भक्ति की आवश्यकता तथा उसके आलंबन

आज के इस आधुनिक कहे जाने वाले उन्नत वेश-भूषाधारी पथभ्रष्ट समाज में भक्ति ही एक मात्र ऐसा दीपक है जिसके प्रकाश से आध्यात्मिक अधंकार को दूर कर भक्ति का प्रकाश फैलाया जा सकता है । आज का समाज विज्ञान की जिन उपलब्धियों के सहारे अपने को आकाश में ले जाने में सक्षम समझ रहा है, वहीं अपनी आध्यात्मिक विरासत को तथा अपनी प्राचीन भक्ति परंपरा का विस्मरण कर अपने को पतन की राह पर भी सौंप रहा है । आध्यात्मिक उन्नति अथवा 'भक्ति' का अर्थ केवल भगवान की दिव्य प्रेममयी सेवा ही नहीं है । अपितु इस सेवा कार्य में उस निष्ठा, सत्यता, समर्पण, त्याग, क्षमता तथा पवित्रता की समूल भावन भी निहित होती है जो कसी भी सभ्य तथा सुसंस्कृत समाज की नींव है, उस समाज का जिसे हम 'अच्छा' की संज्ञा देते हैं उसकी आधारशीला तथा उसके प्राण हैं ।

इस विश्रिंखलित समाज में मानवता अभी बस कुछ हृदयों में ही शेष नज़र आती है ।यहाँ भक्ति ही ऐसा साधन बनती है जो उसके प्राणों को पोषण दे सके । आज जहाँ पारिवारिक कलह, हिंसा, द्वेष घृणा, हत्या तथा अपहरण सामान्य सी घटना है, जो ऐसा शायद कोई दिन ना हो जिस दिन यह सब इस पृथ्वी पर घटित न होता हो । मेरे ऐसा कहने का तात्पर्य यह कदापि नहीं है कि ऐसा पहले नहीं हुआ था या होता था । बल्कि मेरा तात्पर्य यह कहने का है कि आज सर्वत्र यही व्याप्त है । मेरे कहने का तात्पर्य है कि भक्ति की भावना मानव मन में त्याग, समर्पण, सेवा, परोपकार आदि की विचारधारा को पोषण देती है, उसे दृढ़ करती है तथा उसकी जीवन शैली में ये विचारधाराएँ आकर उसको सभ्य समाज का सुंदर उदाहरण बनाती है । आज भले ही कोई ऐसा कह दे कि भक्ति की आवश्यकता इस समाज को नहीं है परंतु कोई यह नहीं कह सकता कि इन महान विचारधाराओं

तथा भावनाओं की भी आवश्यकता इस समाज को या लोगों को नहीं है। अतः ये भावनाएँ जो समाज को सुंदर विचारधाराओं से युक्त करती हैं, अत्यंत ही आवश्यक है।

विभिन्न वैदिक शास्त्रों, पुराणों, श्रुति, स्मृति-ग्रंथों तथा उपनिषदों की माने तो भक्ति के द्वारा ही मनुष्य अपने जन्म को सिद्ध कर सकता है तथा अपने मूल धाम-भगवान के शरण को, उनके निवास को प्राप्त होता है। इसका प्रमाण विभिन्न शास्त्रों में उपलब्ध है। 'नारद-भक्ति-सूत्र' में भक्ति सूत्रों की व्याख्या करते हुए नारद कहते हैं कि भगवत्प्रेम में भक्तिमय सेवा के स्तर को पाकर व्यक्ति सिद्ध, अमृत एवं शांत होता जाता है-

यल्लब्ध्वा पुमान् सिद्धो भवत्यमृतो भवति तृप्तो भवति ।।(प्रभुपाद, नारद-भक्ति-सूत्र 2015: 10)

फिर आगे नारद ऋषि अपने बारहवें सूत्र में व्यक्त करते हुए कहते हैं कि केवल भक्तिमय सेवा ही जीवन की पूर्णता तक पहुँचने का माध्यम है, व्यक्ति को शास्त्राज्ञा का पालन करते रहना चाहिए-

भवतु निश्चयदार्ढ्यादूर्ध्वं शास्त्ररक्षणम् ।।(प्रभुपाद, नारद-भक्ति-सूत्र 2015:27)

भक्तिमयी सेवा के माध्यम से ही मनुष्य को परम गति की प्राप्ति होती है, जो उसके जीवन का मूल एवं अंतिम लक्ष्म भी है। 'श्रीमद्भगवद्गीता' के 8.15 वें श्लोक में भगवान स्वयं इस पूर्ण सिद्धि को वर्णित करते हुए कहते हैं किउनकी भक्तिमय सेवा में नियुक्त महात्मागण ही उन भगवान् को प्राप्त करते हैं तथा इस क्लेशपूर्ण भौतिक जीवन में फिर नहीं लौटते। क्योंकि उन्होंने परम सिद्धि प्राप्त कर ली होती है-

मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम् ।

नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिंपरमांगताः ।।(प्रभुपाद, श्रीमद्भगवद्गीता यथारूप 2011:546)

इस प्रकार की भावना केवल शास्त्रों में ही नहीं अपितु महान-महान आलोचकों, लेखकों, भक्तों आदि की रचनाओं में भी व्यक्त होता आ रहा है। ये महान लेखक यही बताते हैं कि जीवन की परम गति उस परमेश्वर के श्रीचरणों में स्थान पाने में हैं। 'श्रीमद्भगवद्गीता' में 9.32 में भगवान स्वयं इस बात की स्थापना करते हुए कहते हैं कि जो लोग उन भगवान की शरण ग्रहण करते हैं वे भले ही निम्न योनि में जन्मी स्त्री, वैश्य या शुद्र ही क्यों न हों, वहभी उनके परमधाम को प्राप्त करते हैं-

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येपि स्युः पापयोनयः।

स्त्रियो वैश्यास्तथा शुद्रास्तेपि यांति परां गतिम् ।।(प्रभुपाद, श्रीमद्भगवद्गीता यथारूप 2011:326)

'श्रीचैतन्य-चरितामृत' मध्य-लीलामें चैतन्य महाप्रभु सनातन गोस्वामी को उपदेश देते हुए भक्ति की महत्ता प्रतिपादित करते हुए कहते हैं कि एकमात्र भक्ति को छोड़कर आत्म-साक्षात्कार की सारी विधियाँ बकरी के गले में लटके स्तन के समान है। अतः बुद्धिमान मनुष्य आत्म-साक्षात्कार की अन्य सारी विधियों को त्यागकर एकमात्र भक्ति को अपनाता है-

अजा-गल-स्तन-न्याय अन्य साधन।

अतएव हरि भजे बुद्धिमान् जन ।।

(गोस्वामी और प्रभुपाद, श्रीचैतन्य-चरितामृत- मध्य लीला-भाग-5 2013:326)

बालकांड में तुलसीदास हरि-भक्ति की महानता तथा जीवन के परम रहस्य की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि जिन्होंने भगवान की भक्ति को अपने हृदय में स्थान नहीं दिया, वे प्राणी जीते हुए ही मुर्दे के समान है। जो जीभ राम के गुणों का गान नहीं करती, वह मेंढक की जीभ के समान है-

जिन्ह हरिभगति हृदयं नहिं आनी ।जीवत सव समान तेइ प्रानी ।।

जोनहिंकरइ रामगुन गाना। जीह सो दादुर जीह समाना ।।(तुलसीदास 2015:126)

### 3.4 भक्ति के साधन या विधियाँ

हमने देखा कि 'श्रीमद्भागवतम्',शब्दकोश तथा हिंदी आलोचक रामचंद्रशुक्ल तथा विभिन्न ग्रंथों में भी तथा 'रामचरितमानस'आदि काव्यों में भी भक्ति की नौ विधियों की बात कही गई है। ये नौ विधियाँ दूर्लभ भक्ति को सुलभ करती हैं, भगवान से तादात्म्य कराती हैं तथा मनुष्य को साधारण स्तरों से उच्चतर स्तर तक लेकर जाती हैं। नवधा भक्ति की बात 'अरण्यकांड'में राम द्वारा शबरी को सुनायी गयी है। अर्थात् राम यहाँ शबरी द्वारा भक्ति के विषय में प्रश्न करने पर नवधा भक्ति की महिमा सुनाते हुए कहते हैं किजाति-पाँति, कुल, धर्म, धन, बल, कुटुंब, गुण और चतुरता आदि होने पर भी भक्ति विहीन मनुष्य ऐसा लगता हैजैसे जल से विहीन बादल शोभाहीन हो गया हो। राम शबरी से नवधा भक्ति कहते हैं-

जाति पाँति कुल धर्म बड़ाई। धन बल परिजन गुन चतुराई ।।

भगति हीन नर सोहइ कैसा। बिनु जल बारिद देखिअ जैसा ।।

नवधा भगति कहऊँ तोहि पाहीं। सावधान सुनु धरु मन माहीं ।।(तुलसीदास 2015:667)

भक्ति के नवों विधियों के नाम इस प्रकार हैं,-श्रवण, कीर्तन,स्मरण,पाद-सेवन,अर्चन,वंदन,दास्य,सख्य तथा आत्मनिवेदन।

इस प्रकार से इन विधियों का आगे हम राम-भक्ति की विषद विवेचना करते समय विस्तार पूर्वक चर्चा करेंगे।

## 3.4 प्रामाणिक वैष्णव भक्ति संप्रदाय

'भक्ति' की व्याख्या और उसके साधनों की स्थिति पर विचार करने के लिए भक्ति के विभिन्न संप्रदायों के विकास पर ध्यान देना स्वाभाविक है। प्राचीन काल से लेकर वर्तमान युग तक इन्हीं संप्रदायों तथा इसके अनुयायियों की ही देख-रेख में भक्ति का प्रचार-प्रसार होता आ रहा है। इन संप्रदायों में दीक्षित भक्त ही भक्ति को सामान्य जीवन के लिए सुलभ बनाते हैं। ये आचार्य एक खास गुरु परंपरा में दीक्षित होकर अपने नियमों तथा मतवादों का प्रचार-प्रसार करते आ रहे हैं। 'पद्म-पुराण','गर्ग-संहिता', 'श्रीमद्भागवतम्','श्रीचैतन्य-चरितामृत', 'श्रीमद्भगवद्गीता'आदि में इसका स्पष्ट उल्लेख देखने को मिलता है।

'श्री गर्ग-संहिता'में तथा 'पद्म-पूराण'में इन संप्रदायों का भक्ति-जीवन में बड़ा महत्व बताया गया है। 'गर्ग-संहिता'के अनुसार इनके नाम हैं- ब्रह्म संप्रदाय, रुद्र संप्रदाय, श्री संप्रदाय तथा कुमार संप्रदाय। 'श्रीमद्भागवतम्' के षष्ठ स्कंध में एक स्थान पर उल्लेख है-

> शिष्य परंपराएँ चार हैं- एक ब्रह्मा से, एक शिव से, एक लक्ष्मी से तथा एक कुमारों से चलने वाली। ब्रह्मा से चलनेवाली गुरु-शिष्य परंपरा ब्रह्म संप्रदाय कहलाती है, शिव(शंभू) से

चलनेवाली परंपरा रुद्र संप्रदाय तथा लक्ष्मी देवी से चलनेवाली परंपरा श्री संप्रदाय तथा कुमारों से चलनेवाली कुमार संप्रदाय कहलाती है ।(प्रभुपाद, श्रीमद्भागवतम्, षष्ठ स्कंध 2018:140)

'गर्ग-संहिता'(10.61.23-26) में भी इसी बात की पुष्टि मिलती है । वहाँ भी चारों संप्रदायों का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि कोई भक्त इन मान्यता प्राप्त चार संप्रदायों- ब्रह्म, रुद्र, श्री तथा कुमार संप्रदाय की शिष्य परंपरा का पालन न कर अन्यत्र से ग्रहण करता है तथा वह मंत्र जपता है या दीक्षा ग्रहण आदि करता है तो उसका मंत्र या दीक्षा सब निष्फला होती है । उसका उसे कोई भी फल उसे लाभ नहीं होता-

संप्रदायविहीना ये मंत्रास्ते निष्फला मताः

(प्रभुपाद, वैदिक शास्त्रों से चुने हुए श्लोक 2014:347)

अतः भक्ति के ये चार संप्रदाय ही वैष्णव संप्रदाय के प्रामाणिक संप्रदाय हैं तथा इन्हीं संप्रदायों में चलनेवाली शिष्य परंपरा में दीक्षित भक्तों ने इसे अनेक कालों से वर्तमान समय तक गतिशील रखकर इन आचार्यों के मतों का प्रचार-प्रसार किया है । आज के इस वर्तमान युग में देखे तो अनेकों संप्रदाय तथा उप-संप्रदाय आ चुके हैं, जिन्होंने अपनी अलग ही विचारधारा तथा भक्ति पद्धति से समाज को एक अलग ही दिशा में प्रवाहित करने का प्रयास किया है ।

गौरतलब है कि भक्ति काल में भी ये चार संप्रदाय प्रमुख संप्रदाय के रूप में प्रचलित थे । कालांतर में इसके कई उप-संप्रदाय हमारे सामने आ गए । 'गर्ग-संहिता'में ही हमें इन संप्रदायों के प्रमुख प्रामाणिक आचार्यों- विष्णु स्वामी,मध्वाचार्य, रामानुजाचार्य तथा निंबादित्यका भी उल्लेख मिल जाता है-

विष्णु स्वामी वामनामजस्तथा माधवास्तु ब्राह्मणः ।

रामार्जुनस्तु जेस्मज निंबादित्य सनकास्यच ।।

इते कलौयुगे भव्यह संप्रदाय प्रवर्तकः ।

संवत्सरे विक्रमचत्वरः क्षिति पावनः ।।

(http://www.krishna.com/blog/2016/07/17/four-sampradayas-garga-samhita)

डॉ. नगेंद्र द्वारा संपादित 'हिंदी साहित्य का इतिहास'में सगुण भक्ति काव्य पर विचार करते हुए इसका स्पष्ट उल्लेख हुआ है-

> वैष्णव धर्म के प्रवर्तक श्री, ब्रह्म, रूद्र, सनकादि संप्रदायों के अनुयायी आचार्यों ने 'भागवत पुराण' पर टीका, भाष्य, टिप्पणी, वृत्ति आदि लिखकर अपनी पुराण-निष्ठा का परिचय दिया।(नगेंद्र 2003:177)

अतः श्री ब्रह्म, रूद्र तथा सनकादि संप्रदाय का प्रभाव वैष्णव भक्ति में अन्यतम है । इन्हीं प्रामाणिक संप्रदायों से वैष्णव भक्ति का प्रचार-प्रसार होता आ रहा है तथा भारत के अतिरिक्त आज लगभग पूरे विश्व में फ़ैल चुका है । इस प्रकार से इन चारों संप्रदायों का तथा इसके आचार्यों का संक्षिप्त वर्णन यहाँ किया जा रहा है ।

पौराणिक काल से यह प्रमाणित है तथा विभिन्न शास्त्रों तथा प्रामाणिक ग्रंथों में भी यह उल्लेख है कि भगवान कृष्ण या विष्णु की उपासना पद्धति में चार प्रमुख आचार्य अथवा प्रतिष्ठाता आते हैं जिनके नाम- ब्रह्मा, श्रीलक्ष्मी, शिव तथा चार कुमार आते हैं । इन्हीं चारों यथा- ब्रह्मा से ब्रह्म संप्रदाय का उद्भव होता है जिसके प्रामाणिक आचार्य माध्वाचार्य होते हैं जिनसे ब्रह्म संप्रदाय का विकास होता है । श्रीलक्ष्मी से श्री संप्रदाय का

विकास होता है जिसके प्रामाणिक आचार्य रामानुजाचार्य बनते हैं जिनसे स्री संप्रदाय का विकास होता है। शिव से रूद्र संप्रदाय का विकास होता है जिसके प्रामाणिक आचार्य विष्णुस्वामी होते हैं तथा इन्हीं विष्णुस्वामी से रूद्र संप्रदाय का उद्भव तथा विकास होता है। इसके अलावा चौथा संप्रदाय कुमार संप्रदाय है जिसके प्रामाणिक आचार्य निंबाकाचार्य होते हैं तथा इन्हीं से कुमार संप्रदाय का विकास होता है। इन चारों संप्रदायों का प्रधान उद्देश्य वैष्णव-भक्ति का प्रचार-प्रसार करना तथा भगवान विष्णु अथवा राम-कृष्ण की पूजा पद्धति को जनमानस के लिए परंपरागत रूप से सर्वसुलभ बनाना और हरि नाम का प्रचार संपूर्ण पृथ्वी पर करना है। यहाँ इनका क्रमानुसार वर्णन इस प्रकार है-

### 3.4.1 ब्रह्म संप्रदाय

ब्रह्मा से जिस संप्रदाय का उद्भव हुआ उसका नाम ब्रह्म संप्रदाय है। ब्रह्मा से नारद को दीक्षा मिली। नारद ने आगे चलकर प्रह्लाद महाराज, ध्रुव महाराज, व्यासदेव आदि अनेक भगवद् भक्तों को दीक्षा दिया। व्यासदेव से मध्वाचार्य को दीक्षा मिली। इस संप्रदाय के प्रामाणिक आचार्य मध्वाचार्य भी हुए। इन्होंने अद्वैतवाद का विरोध कर द्वैतवाद की स्थापना की थी। डॉ. नगेंद्र द्वारा संपादित 'हिंदी साहित्य का इतिहास'में सगुण भक्ति काव्य में कहा गया है-

> मध्वाचार्य ने अद्वैतवाद का घोर विरोध किया। इनका दार्शनिक मत द्वैतवाद है। इनके मत में भगवान विष्णु आठ गुणों से उपेत और सर्वोच्च तत्व हैं।... वेद का समस्त तात्पर्य विष्णु ही है। मध्वाचार्य का संप्रदाय ब्रह्म-संप्रदाय के नाम से विख्यात है।(नगेंद्र 2003:176)

मध्व आचार्य से ही चैतन्य महाप्रभू ने गुरु शिष्य-परंपरा स्वीकार की थी। आज संपूर्ण भारत ही नहीं बल्कि संपूर्ण विश्व में माध्व गौड़ीय संप्रदाय के शिष्य परंपरा का विस्तार एवं प्रभाव फैलता जा रहा है। श्री

चैतन्य महाप्रभु ने चारों संप्रदायों से कुछ-कुछ ग्रहण किया तथा 'मध्व संप्रदाय' को स्वीकार किया था । सर्वसाक्षी दास की कृति 'श्रीपाद मध्वाचार्य' में इसका स्पष्ट उल्लेख हमें देखने को मिलता है,"श्री चैतन्य महाप्रभु ने स्वयं 'मध्व संप्रदाय' को स्वीकार किया और प्रत्येक वैष्णव संप्रदाय से उन्होंने दो-दो सार वस्तुओं को ग्रहण किया । श्रीपाद मध्वाचार्य से 'केवल अद्वैत खंडन' और 'श्री विग्रहों की नित्या सेवा', रामानुजाचार्य से 'अनन्य भक्ति' और 'भक्तों की सेवा','विष्णुस्वामी से 'तदिय सर्वस्वभाव' और 'राम मार्ग' निंबार्क आचार्य से 'एकांत राधिकाश्रय' और 'गोपी भाव' को स्वीकार किया ।"(दास 2014:03)

### 3.4.2 श्री संप्रदाय

श्री रामानुजाचार्य से इस संप्रदाय का प्रारंभ होता है जिन्होंने राम-भक्ति को मानव समाज में स्थापित किया था । 'हिंदी साहित्य का इतिहास'के 'सगुण भक्ति काव्य' अध्याय में एक स्थान पर लिखा गया है-

> आचार्य रामानुज ने अवतारी राम को अपनी विष्णु-भक्ति का उपास्य देव स्वीकार कर विशिष्टाद्वैत-सिद्धांत की स्थापना की । उनके मत में पुरुषोत्तम ब्रह्म सगुण और सविशेष हैं । भक्तों पर अनुग्रह करने के लिए वे पाँच रूप धारण करते हैं । इन्हीं में अर्चावतार राम की गणना होती है । भक्ति ही मुक्ति का साधन है ।(नगेंद्र 2003:177)

इस प्रकार यहाँ भी रामानुजाचार्य की भक्ति में राम को उपास्य देव मानकर उनके सगुण रूप की भक्ति को मुक्ति का साधन घोषित करता है जो आगे चलकर रामानंद तथा तुलसीदास पर प्रभाव डालती है । पुनः आगे वे लिखते हैं-

दार्शनिक स्तर पर यह सिद्धांत 'विशिष्टाद्वैत'कहलाता है और इस संप्रदाय को 'श्री-संप्रदाय'कहते हैं । इस संप्रदाय का प्रबल प्रभाव रामानंद स्वामी पर देखा जा सकता है । हिंदी के वैष्णव कवियों में गोस्वामी तुलसीदास भी इससे अत्यधिक प्रभावित हैं ।(नगेंद्र 2003:177)

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपने 'हिंदी साहित्य का इतिहास'में भक्तिकाल की रामभक्ति शाखा में एक स्थान पर तुलसीदास की भक्ति पद्धति पर विशिष्टाद्वैत सिद्धांत का प्रभाव कुछ इन शब्दों में निरूपित किया है-

तुलसी ने अपनी उपासना के अनुकूल विशिष्टाद्वैत सिद्धांत का आभास भी यह कहकर दिया है-

सियाराममय सब जग जानी । करौं प्रनाम जोरि जुग पानी ।।

जगत् को केवल राममय न कहकर उन्होंने 'सियाराममय' कहा है । सीता प्रकृतिस्वरूपा हैं और राम ब्रह्म हैं; प्रकृति अचित् पक्ष है और ब्रह्म चित् पक्ष ।(शुक्ल 2015:78)

अतः गोस्वामी तुलसीदास पर 'श्री संप्रदाय'का तथा 'विशिष्टाद्वत-सिद्धांत'का प्रबल प्रभाव रहा है ।

### 3.4.3 निंबार्क-संप्रदाय अथवा कुमार-संप्रदाय

चतुष्कुमार को ब्रह्मा का पुत्र कहा गया है । 'श्रीमद्भागवतम्'के चतुर्थ स्कन्ध भाग-2(4.22.4) में इन कुमारों का उल्लेख मिलता है । महाराज पृथु के शासन काल में उन्होंने इन चार कुमारों के आगमन पर बड़ी सेवा की थी-

गौरवाद्यंत्रित: सभ्यः प्रश्रयानतकंधरः ।

विधिवत्पूजयां चक्रे गृहीताध्यर्हणासनान् ।।

(प्रभुपाद, श्रीमद्भागवतम्, चतुर्थ स्कंध-भाग-2 2018:119)

जब वे महान् ऋषिगण शास्त्रविहित ढंग से उनके अग्रज द्वारा किये गए स्वागत को स्वीकार कर राजा द्वारा प्रदत्त आसनों पर बैठ गए तो राजा उनके गौरव के वशीभूत होकर तुरंत नतमस्तक हुए। इस प्रकार उन्होनें चारों कुमारों की पूजा की।

इन्हीं चारों कुमारों द्वारा प्रतिपादित संप्रदाय कुमार-संप्रदाय के नाम से विख्यात है जिनके गुरु शिष्य परंपरा में निम्बार्क हुए जिनके नाम से इस संप्रदाय को निम्बार्क-संप्रदाय भी कहा जाता है । डॉ. नगेंद्र के इतिहास के सगुण भक्तिकाव्य खंड में उल्लेख है-

> श्री निम्बार्क का संप्रदाय सनकादि संप्रदाय के अंतर्गत है। इस संप्रदाय का दार्शनिक सिद्धांत 'भेदाभेदवाद'या 'द्वैताद्वैतवाद'है। जीव अवस्था-भेद से ब्रह्म के साथ भिन्न भी है तथा अभिन्न भी है। जीव ब्रह्म का अंश है, ब्रह्म अंशी है। जीव अणु, अल्पज्ञ है। भक्ति ही मुक्ति का साधन है। विष्णु के अवतार-रूप कृष्ण ही उपास्य हैं । राधा-कृष्ण की युगलोपासना का विधान इस संप्रदाय में है। ब्रजमंडल में इसका प्रचार है और इसके अंतर्गत श्री कृष्ण की अनेक लीलाओं के द्वारा भक्ति-भाव की अभिव्यक्ति की जाती है। निम्बार्क-संप्रदाय के अनेक कवियों ने ब्रजभाषा में सुंदर पद रचना की है । स्वामी हरिदास का सखी-संप्रदाय इसी की शाखा है ।(नगेंद्र 2003:178)

अतः कहा जा सकता है कि वैष्णव-भक्ति के मूलरूप से चार प्रामाणिक संप्रदाय प्रचलित हैं । इन संप्रदायों में कुछ उप-संप्रदायों का भी सम्मिलन देखा गया है, जैसे वल्लभ संप्रदाय, सखी संप्रदाय, रामानंदी संप्रदाय इत्यादि। परंतु ध्यानपूर्वक विचार करने से यह स्पष्ट पता चलता है कि ये सारे उप-संप्रदाय इन्हीं चार मूल संप्रदायों के अंतर्गत आते हैं।

### 3.4.4 रूद्र संप्रदाय

भगवान शिव से विकसित इस संप्रदाय को रूद्र-संप्रदाय के नाम से जाना जाता है । इस संप्रदाय के आचार्य श्री विष्णुस्वामी हैं । नगेंद्र द्वारा संपादित 'हिंदी साहित्य का इतिहास' में सगुण भक्ति काव्य में इसके संबंध में कहा गया है-

> विष्णुस्वामी(1300) के मत में ईश्वर सच्चिदानंद-स्वरूप हैं तथा वे अपनी ह्लादिनी शक्ति के द्वारा आश्लिष्ट हैं । माया उन्हीं के अधीन रहती है । इनके मत में ईश्वर का प्रधान अवतार नृसिंह है । कुछ विद्वान नृसिंह और गोपाल दोनों का इन्हें उपासक मानते हैं ।इस संप्रदाय के दार्शनिक सिद्धांत ग्रंथ-रूप में उपलब्ध नहीं हैं । इनकी शिष्य-परंपरा में वल्लभाचार्य का स्थान है और उन्हीं के सिद्धांतों को विष्णुस्वामी-संप्रदाय में स्थान दिया जाता है ।(नगेंद्र 2003:178)

## 3.5 'रामचरितमानस' में रामभक्ति

भक्तिकाल के महानतम अग्रदूत तथा महान भक्त,भविष्य द्रष्टा एवंकाव्य प्रतिभा के अमिताभ गोस्वामी तुलसीदास की सर्वोच्च रचना 'रामचरितमानस'रामभक्ति का एक ऐसा दीपक है जिसका प्रकाश केवल तत्कालीन परिवेश की ही नहीं बल्कि आने वाले अंधकारमय समाज में भी ज्ञान और भक्ति का सुंदर आलोक फैलानेवाला है। भक्ति का जैसा सर्वोच्चतम उदाहरण इस राम-काव्य में हमें देखने को मिलता है वैसा भक्तिकाल में हिंदी के किसी अन्य कवि या उनके काव्य में नहीं मिलता । 'रामचरितमानस'रामभक्ति की सुखमयी आभा से ओत-प्रोत एक ऐसा पथ प्रदर्शक महाकाव्य है जो समाज के पथभ्रष्ट एवं दमीत मानसिकता को सत्य और सभ्यता का वह मार्ग दिखाता हैजिसकी तुलना किसी समाज में दुर्लभ है । शायद यही कारण है कि सुंदर समाज की तुलना तथा प्रतीकात्मकता को चिह्नित करने हेतु जिस प्रकार रामराज्य की संज्ञा दी जाती है उसी प्रकार रामराज्य की

सुंदर झाँकी दिखाने हेतु 'रामचरितमानस'के महानप्रसंगों तथा महानतम् पात्रों का गुणगान भी किया जाता है। भक्ति मर्मज्ञ श्री जयदयाल गोयंदका अपनी पुस्तक 'नवधा भक्ति' में कहते हैं कि 'जैसे बीमार मनुष्य का रोग समाप्त करने के लिए औषध आवश्यक है वैसे ही जन्म-मरण रूपी भवसागर से पार निवृत्ति के लिए ईश्वर भक्ति ही परमौषध है।(गोयंदका 2019:07)

'रामचरितमानस'में रामभक्ति को जिस महान आदर्श के साथ यहाँ दिखाया गया है उसको देखकर मन में ऐसी ही सुंदर भावनाएँ उमड़ पड़ती हैं जिसमें सभ्य समाज की छवि बन जाती है। तुलसीदास वास्तव में एक ऐसे रामभक्त थे जिनका जीवन और व्यक्तित्व पूर्णतः राम को समर्पित ही नहीं बल्कि आने वाले युगों-युगों तक भक्तों को रामभक्ति की प्रेरणा देता आ रहा है। तुलसीदास 'राम' नाम के एकबार स्मरण मात्र से भवसागर पार हो जाने की बात कहते हैं। 'रामचरितमानस'के 'अयोध्याकांड'में 'राम' नाम को बहुत प्रभावशाली मानते हुए कहते हैं कि राम के नाम का एक बार स्मरण करने मात्र से मनुष्य इस जीवन-मरण रूपी भवसागर से पार उतर जाता है-

जासु नाम सुमिरत एक बारा।उतरहिं नर भवसिंधु अपारा।।(तुलसीदास 2015:427)

मध्यकाल में ही रचित श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी की 'श्रीचैतन्य-चरितामृत'ग्रंथ के आदिलीला श्लोक सं. 17.22 में भी भगवान के नाम के जप की महिमा का इसी प्रकार से सुंदर वर्णन किया गया है। यहाँ निम्नोक्त श्लोक के अनुसार भक्तिकाल में अवतरित श्री चैतन्य महाप्रभु यह संदेश देते हैं कि इस कलियुग में भगवान का पवित्र नाम स्वयं भगवान का अवतार स्वरूप है। केवल पवित्र नाम के कीर्तन से ही कोई भी मनुष्य

भगवान की प्रथम संगति के योग्य बन सकता है और जो कोई भी मनुष्य इस युग में सेवा करता है उसका निश्चित ही उद्धार हो जाता है। उसका एक उदाहरण द्रष्टव्य है-

कलि-काले नाम-रूपे कृष्ण-अवतार।

नाम हैते हय सर्व-जगन्निस्तार।।

(गोस्वामी और प्रभुपाद श्रीचैतन्य-चरितामृत- आदि लीला-भाग-2 2013:580)

इतना ही नहीं तुलसी के राम जिस प्रकार भक्तों के उद्धारकर्ता हैं उसी प्रकार प्रजा पालक भी हैं। उनकी यही विनम्रता राम को आदर्श राजा के साथ-साथ आदर्श पुरुष भी बनाती है। यह विनम्रता राम ने अपने भक्तों पर ही नहीं उड़ेली बल्कि राम के संपर्क में आनेवाले प्रत्येक जीव-जंतु–मनुष्य को प्राप्त हुई है। जहाँ एक ओर तुलसीदास राम के पवित्र नाम की महत्ता को उजागर करते हैं वहीं दूसरी ओर स्वयं राम एक केवट जैसे साधारण नाविक से विनम्रता पूर्वक आग्रह करते हैं। 'रामचरितमानस'के 'अयोध्याकाण्ड'में स्पष्ट देखने के मिलता है-

सोई कृपालु केवटहि निहोरा।जेहिं जगु किय तिहु पगहु ते थोरा।।(तुलसीदास 2015:427)

यहाँ पर वही राम की महिमा का गुणगान किया गया है जिन्होंने वामन अवतार में अपने नन्हें से कोमल-कोमल दो पग में ही संपूर्ण जगत को नाप लिया था, सारे जगत को अपने दो पग में ही छोटा कर दिया था। वही राम आज एक साधारण से केवट से निहोरा कर रहे हैं, उससे एक साधारण सी नाँव से नदी पार कराने का आग्रह कर रहे हैं। अतः यहाँ पर राम के शील स्वभाव का सुंदर उदाहरण प्रस्तुत होता है। राम संपूर्ण

सृष्टि को अपने पग से नाप सकने की क्षमता रखते हुए भी भक्ति-भाव से ओत-प्रोत एक परम प्रिय भक्त केवट को नाँव से नदी पार कराने का अवसर दे रहे हैं।

'रामचरितमानस'के 'अयोध्याकांड'में तुलसीदास राम को अगोचर कहकर संबोधित करते हुए कहते हैं कि राम अगम हैं। जिसके स्वरूप का वर्णन बाणी द्वारा अगोचर, बुद्धि द्वारा परे तथा जिसके स्वरूप की वर्णना को व्यक्त नहीं किया जा सकता, वह अव्यक्त हैऔर जिसकी कथा अपार सागर सदृश है तथा वेद जिसकी निरंतर स्तुति गाते रहते हैं, उन श्रीराम की महिमा का क्या कहना-

राम सरूप तुम्हार बचन अगोचर बुद्धिपर।

अबिगत अकथ अपार नेति नेति नित निगम कह ।।(तुलसीदास 2015:449)

'श्रीमद्भगवद्गीता'में अर्जुन भी भगवान की महिमा का भान होते ही इसी प्रकार से संबोधित करते हुए कहते हैं किकृष्ण परम ब्रह्म हैं। धामों में पवित्रतम परम धाम हैं। वे ही परम सत्य हैं। वे नित्य हैं, आदि पुरुष अजन्मा तथा सबसे महानतम हैं। भक्ति के आचार्य नारद, असीत ऋषि, देवल तथा भार्गव व्यासदेव जैसे महान् ऋषि गण भी इसी सत्य की पुष्टि अनेक बार कर चुके हैं। उन्होनें अर्जुन से जो कुछ भी कहाउससे न तो देवतागण उन भगवान के स्वरूप को समझ सकते है और न ही असुरगण उनके स्वरूप का पार भी पा सकते हैं-

परं ब्रह्म परं धाम पवित्रम् परमं भवान्।

पुरुषं शाश्वतं दिव्यमादिदेवमजं विभुम् ।।

आहुस्त्वामृषयः सर्वे देवर्षिर्नारदस्तथा।

असितो देवलो व्यासः स्वयं चैव ब्रवीषि में ।।

सर्वमेतदृतं मन्ये यन्मां वदसि केशव ।

न हि ते भगवनव्यक्तिं विदुर्देवा न दानवा: ।।(प्रभुपाद, श्रीमद्भगवद्गीता यथारूप 2011:343)

अतः इस प्रकार से तुलसीदास भी राम को अव्यक्त, अगम, अगोचर कहते हैं ।

इसी अध्याय में आगे चलकर तुलसीदास राम के श्रेष्ठत्व का वर्णन कर उनकी अपार महिमा का गुणगान करते हैं । 'अयोध्याकाण्ड'का एक उदारण द्रष्टव्य है जहां तुलसीदास कहते हैं कि रघुकूल के नंदन राम की ही कृपा प्राप्त करके भक्तगण उनको जानने में सक्षम हो पाते हैं । राम वह चंदन हैं जो भक्तजनों के हृदय को शीतल और पवित्र कर देते हैं-

सोइ जानइ जेहि जनाई । जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई ।।

तुम्हरिहि कृपा तुम्हहि रघुनंदन । जानहिं भगत भगत उर चंदन ।।(तुलसीदास 2015:449)

भक्त शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदास आगे कहते हैं कि शिव, ब्रह्मातथा विष्णु को भी नचाने वाले हैं राम । राम समस्त संसार को देखनेवाले हैं । वे ही संपूर्ण जगत के आदि नियंता हैं । स्वयं ब्रह्मा, शिव तथा विष्णु भी भगवान के मर्म को नहीं जानते तो उन्हें और भला कौन जान सकता है-

जगु पेखन तुम्ह देखनिहारे । बिधि हरि संभु नचावनिहारे ।।

तेउनजानहिंमरमुतुम्हारा।औरु तुम्हहि को जाननिहारा ।।(तुलसीदास 2015:449)

तुलसीदास राम के उस स्वरूप पर मुग्ध हुए जिसमें समस्त ब्रह्मांड के नियंता स्वयं भगवान अपने माता-पिता की इच्छा पालन करने हेतु चौदह वर्ष का वनवास इतनी सहजता से ग्रहण कर लेते हैं जैसे कि कोई पुरस्कार हो ।राम का यही मर्यादित व्यक्तित्व उन्हें आदर्श राजा तथा आदर्श पुत्र के रूप में प्रकटकर सबका हृदय मुग्ध कर लेता है । अयोध्या कांड का एक उदाहरण द्रष्टव्य है-

अति लघु बात लागि दुखु पावा ।काहुँ न मोहि कहि प्रथम जनावा ।।

देखि गोसाइँहि पूँछिउँ माता ।सुनि प्रसंगु भए सीतल गाता ।।

मंगल समय सनेह बस सोच परिहरिअ तात ।

आयसु देइअ  हरषि हियँ कहि पुलके प्रभु गात ।।(तुलसीदास 2015:381)

यहाँ उक्त पंक्ति में तुलसीदास राम के उस आदर्शवादी व्यक्तित्व की पराकाष्ठा का संकेत कराते हैं जिसकी वंदना संपूर्ण समाज करता आ रहा है । राम जिन्हें अगली सुबह राज्याभिषेक करके राजा बनाना था उन्हें एक पल में वनवास का दुःख भोग मिला । परंतु इस पर भी वे तनिक भी डगमगाए नहीं । तुरंत ही तैयार हो वन जाने को निकल गए । राम अपने पिता से केवल यही कहते हैं कि इस छोटी-सी बात के लिए वे इतना कष्ट सह रहे हैं । उन्हें तो बस इसी बात का दुःख है कि यह बात राजा दशरथ ने पहले उनसे क्यों नहीं कही । जब राम ने माता से पूछा तब यह प्रसंग ज्ञात हुआ । अतः यह सुनकर तो राम का सारा अंग शीतल हो गया । राम को अत्याधिक प्रसन्नता हो रही है कि वेपिता की आज्ञा प्राप्त करने के लायक हैं । इसलिए राम पिता को इस मंगल बेला के समय व्यर्थ विलाप को त्यागकर स्नेहपूर्वक वन जाने की आज्ञा देने के लिए कितनी सरलता से कहते हैं । राम का सर्वांग पुलकित  हो गया । यह एक महान् पुत्र के महान आदर्श तथा पितृ सेवा का असाधारण

उदाहरण है, जो आनेवाली पीढ़ी को एक सर्वश्रेष्ठ उदाहरण प्रस्तुत करेगा जहाँ पिता-माता की सेवा के लिए राज-पाठ का त्याग दे दिया गया है।

'श्रीचैतन्य-चरितामृत' के आदि लीला भाग-1.3.25 में भी स्वयं महाप्रभू श्रीचैतन्य यही बात सिद्ध करने हेतु आचरण की श्रेष्ठता पर प्रकाश डालते हैं। 'श्रीमद्भगवद्गीता' के तृतीय अध्याय से उद्धत एक श्लोक का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए वे कहते हैं कि महान पुरुष जो भी आचरण करता है सामान्य जन उसका अनुगमन करते हैं। वह आदर्श कार्यों से जो भी मानदंड स्थापित करता है, उसका ही अनुसरण सारा जगत् करता है-

यद् यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।

स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ।।

(गोस्वामी, श्रीचैतन्य-चरितामृत- आदि लीला-भाग-1 2013:186)

अतः महान पुरुषों का आचरण समाज की नींव मानी जा सकती है। उनके किए गए कार्यों का समाज में अच्छा प्रभाव भी पड़ सकता है तथा बूरा प्रभाव भी। अतः सत् आचरण से युक्त महापुरुष समाज के लिए वरदान तुल्य हैं तथा उनका स्मरण, उनके कार्यों की प्रशंसा अत्यंत आवश्यक है।

रामभक्ति केवल जीवों के आध्यात्मिक, पारमार्थिक तथा दैहिक उद्धार का ही कारण नहीं है, बल्कि यह तो समस्त जीवों के संपूर्ण जीवन-काल को सही ढंग से जीने की-शुद्ध आचरण, व्यवहारशीलता की तथा अपने रिश्ते-नातों और समाज के लोगों के प्रति सद्-व्यवहार का सुंदर और प्रशंसनीय उदाहरण भी प्रस्तुत करता है।

रामभक्ति एक डाकु को भी शुद्ध मानव बना डालने की क्षमता रखती है। रामभक्ति आज समाज के लिए प्राण वायु सदृश है जिसके बिना एक शरीर बेजान-सा प्रतीत होता है।

### 3.6 युगधर्म और रामभक्ति

वैदिक शास्त्रों के मतानुसार चार युगों की बात कही गयी है। केवल वैदिक शास्त्रों आदि की ही बात नहीं है, बल्कि यहाँ बड़े-बड़े आचार्यों मुनियों तथा महात्माओं ने भी युगधर्म की बात कही है। पौराणिक मान्यताओं के अनुसार सत्य युग, त्रेता युग, द्वापर युग तथा कलियुग इन चार युगों में ही हमारी पृथ्वी पर अनेकों महापुरुषों तथा देवी-देवताओं का अवतार होता आया है। श्री जयदयाल गोयंदका अपनी पुस्तक 'नवधा भक्ति' में लिखते हैं कि 'जो सत्ययुग में श्री हरि के रूप में, त्रेतायुग में श्री राम के रूप में, द्वापर युग में श्री कृष्ण के रूप में प्रकट हुए थे, उन प्रेममय नित्य अविनाशी हरि को ही ईश्वर समझना चाहिए।(गोयंदका 2019:06)

हर युग में किसी-न-किसी रूप या वेश में भक्ति का प्रचार-प्रसार किया गया है। विभिन्न अवतारों की कथाएँ भी विभिन्न युगों-युगों से प्रचलित होती चली आ रही हैं। परंतु इन सबमें एक वस्तु में अत्यंत साम्य देखने को मिलता है और वह है हरि भक्ति या विष्णु अथवा राम-कृष्ण आदि की भक्ति। चारों युगों के गुणों और भक्ति की आवश्यकता पर प्रकाश डालते हुए तुलसीदास अपने 'रामचरितमानस' के'बालकांड'में कहते हैं कि चाहे कोई भी काल क्यों न हो, सत्ययुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग तथा कलियुग चारों युगों में ही भगवान के नाम जप से ही सांसारिक जीव शोक विहीन हुए हैं। वेद-पुराणादि तथा संतों और महापुरुषों का यही कथन है कि श्री राम के नाम जप और भक्ति में ही समस्त पुण्यों तथा समस्त कर्म-फलों की प्राप्ति है-

चहुँ जुग तीनि काल तिहूँ लोका। भए नाम जपि जीव बिसोका।।

बेद पुरान संत मत एहू । सकल सुकृत फल राम सनेहू ।।(तुलसीदास 2015:48)

यहाँ वे द्वितीय पद में जब चार युगों के गुणों आदि तथा क्रियाओं की विवेचना करते हैं तब वे सत्य युग, त्रेता युग, द्वापर युग और कलियुग की भक्ति विधि की भी बात कहते हैं। 'बालकांड'का ही एक उदाहरण द्रष्टव्य है,-

ध्यानु प्रथम जुग मखबिधि दूजें । द्वापर परितोषत प्रभु पूजें ।।

कलि केवल मल मूल मलीना । पाप पयोनिधि जन मन मीना ।।(तुलसीदास 2015:48)

यहाँ पर गोस्वामी तुलसीदास कहते हैं कि सत्य युग में ध्यान करके भगवान की कृपा प्राप्ति की चेष्टा की जाती थी। द्वितीय अर्थात् त्रेता युग में यज्ञ आदि करके भगवान को प्रसन्न किय जाता था। तृतीय युग मे अर्थात् द्वापर युग में भगवान के पूजन आदि द्वारा भगवान की सेवा करकेप्रसन्न करने की परंपरा थी। परंतु इस चतुर्थ युग कलियुग में ये तीनों प्रकार की चेष्टाएँ संपूर्ण सात्विक विधि से करना असंभव हो गया है। इस युग में कोई भी हजारों वर्ष तक जीवित नहीं रह सकता, तब तपस्या करने का सवाल ही पैदा नहीं होता। इसीलिए पुराण आदि वैदिक शास्त्रों की माने तो इस कलियुग का एक विशेष गुण यह है कि इस युग में केवल हरि नाम स्मरण, जप आदि के द्वारा पाप के समुद्र से भी सहजता से उद्धार हो जानेवाला है।

आगे पुनः 'बालकांड' में एक श्लोक में कलियुग के महात्म्य की भी वर्णना करते हुए कविराज गोस्वामी तुलसीदास लिखते हैं कि ऐसे पाप के समुद्र रूपी इस कलियुग में हरि नाम उस कल्पवृक्ष के समान है जिसकी स्तुति या स्मरण मात्र से ही संसार भर की सारी परेशानियों, पापों तथा संपूर्ण अपवित्रता का नाश होता है। कलियुग में किसी हवन, तपस्या, यज्ञ तथा पूजन आदि के बिनाही केवल सच्चे हृदय से हरि का नाम स्मरण या

जप करने मात्र से मनोवांछित फल की प्राप्ति होती है । यह हरि नाम इतना प्रभावशाली है कि इस लोक में माता-पिता के समान हमारी रक्षा तथा पालन-पोषण करता है तथा परलोक में भी हमारा कल्याण करनेवाला है-

नाम कामतरु काल कराला । सुमिरत समन सकल जग जाला ।।

राम नाम कलि अभिमत दाता । हित परलोक लोक पितु माता ।।(तुलसीदास 2015:48)

जहाँ तक युग धर्म का प्रश्न आता है तो 'श्रीमद्भगवद्गीता'में भगवान श्रीकृष्ण ने महाभारत के महाविनाशकारीयुद्ध में कुरुक्षेत्र में अर्जुन को उपदेश देते हुए युगधर्म और भक्तों के उद्धार की बात भी कही है । 'श्रीमद्भगवद्गीता'के 4.7 श्लोक में स्वयं भगवान कहते हैं-

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ।।

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।

धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ।।(प्रभुपाद, श्रीमद्भगवद्गीता यथारूप 2011:141)

यहाँ भगवान अर्जुन से कहते हैं कि जब भी और जहाँ भी धर्म का पतना होता है और अधर्म की प्रधानता होने लगती है, तब तब वे अवतार लेतेहैं । भक्तों का उद्धार करने, दुष्टों का विनाश करने तथा धर्म की फिर से स्थापना करने के लिए वे हर युग में प्रकट होते हैं ।

अतः यहाँ भगवान स्वयं युगधर्म की बात कहते हैं। इस प्रकार प्रति युग- सत्य युग, त्रेता युग, द्वापर युग तथा कलि युग में जब भी धर्म का विनाश होता है, भक्तों को उद्धार की याचना करनी पड़ती है तब-तब भगवान उस-उस युग में प्रकट होकर धर्म की तथाभक्ति की स्थापना कर भागवत धर्म की प्रतिष्ठा करते हैं। जिस प्रकार से तुलसीदास ने कलियुग में नाम की विस्तृत महिमा गायी है तथा युग धर्म की व्याख्या की है। ठीक इसी प्रकार से श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी द्वारा विरचित 'श्रीचैतन्य-चरितामृत'ग्रंथ के आदि लीला, अध्याय तीन में कहा गया हैकि कलियुग की धार्मिक विधि यही है कि भगवान के पवित्र नाम की महिमाओं का प्रसार किया जाए। केवल इसी उद्देश्य से भगवान् पीत रंग लेकर श्रीचैतन्य रूप में अवतरित हुए हैं-

कलि-युगे युग-धर्म-नामेर प्रचार।

तथि लागि पीत-वर्ण चैतन्यावतार।।

(गोस्वामी और प्रभुपाद, श्रीचैतन्य-चरितामृत- आदि लीला-भाग-1 2013:196)

भक्तियोग की व्याख्या करते हुए मध्वाचार्य ने 'मुंडक उपनिषद'में 'नारायण-संहिता'के एक भाष्य के एक श्लोक में यह प्रमाणित किया है कि द्वापर युग में भगवान् विष्णु की पूजा नारद-पञ्चरात्र तथा अन्य ऐसे प्रामाणिक पुस्तकों के विधानों के द्वारा किया जाना श्रेयकर था। किंतु कलियुग में केवल पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के पवित्र नामों का कीर्तन करना चाहिए-

द्वापरीयैर्जनैर्विष्णुः पञ्चरात्रैस्तु केवलैः।

कलौ तु नाममात्रेण पूज्यते भगवान् हरिः।।(दास 2014:243)

'बृहन्नारदीय पुराण'के 3.8.126 वें श्लोक में एक स्थान पर हरि नाम के महात्म्य को प्रकट करते हुए कहा गया है कि इस कलियुग में आध्यात्मिक उन्नति के लिए हरिनाम हरिनाम और केवल हरिनाम के अतिरिक्त अन्य कोई विकल्प नहीं है, अन्य कोई विकल्प नहीं है, अन्य कोई विकल्प नहीं है-

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नाम केवलम्।

कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ।।

(प्रभुपाद, वैदिक शास्त्रों से चुने हुए श्लोक 2014:341)

'श्रीचैतन्य-चरितामृत'में श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी आदि लीला 7.74 में एक श्लोक में लिखते हैं कि इस कलियुग में भगवन्नाम के कीर्तन से बढ़कर अन्य कोई धर्म नहीं है ।क्योंकि यह समस्त वैदिक स्तोत्रों का सार है । यही सारे शास्त्रों का तात्पर्य है-

नाम विनु कलि-काले नाहि आर धर्म ।

सर्व-मंत्र-सार नाम, एइ शास्त्र-मर्म ।।

(गोस्वामी और प्रभुपाद, श्रीचैतन्य-चरितामृत- आदि लीला-भाग-1 2013:719)

'ब्रह्मवैवर्त पुराण'में भी एक स्थान पर गोविंद की भक्ति को सर्वश्रेष्ठ सिद्ध करते हुए उनके चरण जुगल का ध्यान कर अपने जन्म-मरण के चक्कर से उद्धार पाने की बात बतायी गयी है । अर्थात् चौरासी लाख योनियों में क्रमिक विकास के द्वारा उत्क्रांति होकर जीव को मनुष्य जन्म प्राप्त होता है । यह मनुष्य शरीर वे मूर्ख अभिमानी लोग व्यर्थ गँवा देते हैं, जो गोविंद के चरणों का आश्रय नहीं लेते-

अशीतिं चतुरश्चैव लक्षांस्ताञ्जीव-जातिषु ।

भ्रमद्भिः पुरुषैः प्राप्यं मानुष्यं जन्म-पर्ययात् ।

तदप्यफलतां जातः तेषामात्माभिमानिनां ।

वराकाणामनाश्रित्य गोविंद-चरण-द्वयम् ।

(प्रभुपाद, वैदिक शास्त्रों से चुने हुए श्लोक, 2014:341)

शंकराचार्य ने भी यही बात बताई है कि श्री गोविंद के भजन के अलावा अन्य कोई उपाय नहीं है । वे सभी को मूर्ख कहते हुए कहते हैं कि केवल श्रीगोविंद का भजन करो, केवल श्रीगिविंद का भजन करो, केवल श्रीगोविंद का भजन करो । हमारा व्याकरण का ज्ञान एवं शब्द चातुरी मृत्यु के समय हमारी रक्षा नहीं कर पाएगा-

भज गोविन्दं भज गोविन्दं भज गोविन्दं मूढ़मते ।

संप्राप्ते सन्निहिते काले, न हि न हिरक्षति डुकृञ्करणे ।।

(प्रभुपाद, वैदिक शास्त्रों से चुने हुए श्लोक 2014:388)

इस प्रकार से हम देखते हैं कि युगधर्म की प्रवृत्ति के अनुसार ही इस कलियुग में नाम की महिमा का प्रचार तथा राम अथवा कृष्ण की भक्ति का मार्ग प्रशस्त हुआ है । सभी शास्त्रों-पुराणों तथा संत महात्माओं ने भी इसी युग धर्म की तथा भक्ति मार्ग की बात कही है ।

## 3.7 'रामचरितमानस' में रामभक्ति और उसकी विषद विवेचना

किसी भी रचना में रचनाकार जो भी कथावस्तु अथवा घटनाक्रम को आधार बनाकर अपने रचना कौशल द्वारा उसे एक जीवंत रूप देकर समाज के योग्य बनाकर सबके सामने प्रस्तुत करता है, उस रचना में वह अपनी विचारधारा, अपने मन में उठ रहे विभिन्न बातों को और समाज की वर्तमान स्थिति के साथ उसका तादात्म्य कर कुछ ऐसी कड़ियों तथा उपस्थापनाओं को भी सामने अवश्य ही रखता है जिसके माध्यम से वह समाज को कुछ अवश्य ही दिखाना चाहता है,उसका पथ प्रदर्शन करना चाहता है। इन सभी उपस्थापनाओं को स्थापित करने के लिए वह घटनाओं अथवा पात्रों का सहारा भी लेता है, या यूँ कहें कि वह अपने पात्रों के माध्यम से ही उन भावनाओं, विचारधाराओं तथा शिक्षाओं को भी स्थापित कर देता है, तो गलत नहीं होगा। रचनाकार चाहे किसी समस्या को दिग्दर्शन करना चाहे अथवा उसका समाधान प्रस्तुत करने की ही उसकी इच्छा हो वह पात्रों के माध्यम से भी उसकी सरलता पूर्वक प्रस्तुतीकरण कर देता है।

'रामचरितमानस'केवल एक रामभक्ति परक काव्य या रामकथा का युगानुरूप प्रस्तुतीकरण ही नहीं है बल्कि इसमें कविराज गोस्वामी तुलसीदास ने प्राचीनकालीन भारतीय इतिहास से लेकर तत्कालीन परिस्थितियों के चित्रण एवं उन समस्याओं का निराकरण तथा भारतीय धर्म, भक्ति, संस्कृति, सेवा, परोपकार, निति, न्याय, सत्य, आदर्श, नियम तथा कर्म आदि के सभी मानदंडों एवं बातों को उजागर कर समाज का कल्याण भी किया है। कविराज गोस्वामी तुलसीदास ने समाज की वर्तमान स्थिति एवंपरिस्थिति को देखते हुए तथा आनेवाले भविष्य की चिंता करते हुए ऐसे मानदंडों को ध्यान में रखते हुए इस महाकाव्य 'रामचरितमानस'की रचना की है कि वर्तमान समाज को जिस प्रकार नवजीवन मिला, उसी प्रकार आनेवाले भविष्य का भी पथ प्रदर्शन कर उसमेंआदर्श समाज और आदर्श व्यक्तित्व एवं धर्म तथा भक्ति की ज्योति जगा दे

जिसके प्रकाश में आज का समाज प्रकाशमान है तथा युगों-युगों तक यह इसी प्रकार से उसका मार्गदर्शन भी करता रहेगा।

गौरतलब है कि तुलसीदास ने इन सभी मानदंडों को इस महान महाकाव्य में निहित पात्रों के माध्यम से ही निरूपित किया है। चाहे वह उच्चतम आदर्शवादी व्यक्तित्व हो जो राम आदि सभी पात्रों की प्रथम ज्योति है अथवा सेवा की महानतम सीमारेखा खींच देने वाले परम प्रिय हनुमान,लक्ष्मण तथा भरत जैसे परम सेवक एवं भाई हो जिनकी सेवा इतनी उच्चतम कोटि की है कि आनेवाले भविष्य में दुर्लभ होते हुए भी पथ प्रदर्शन में अन्यतम हैं। फिर आदर्श पत्नी की वो सेवापरायणता जो भारतीय संस्कृति की नींव है, वह हमें सीता में देखने को मिलता है। धर्म की राह पर चलते हुए अपने प्राणों की परवाह न कर, धर्म और सेवा के लिए लड़नेवाले अंगद जैसे करोड़ों वानरों के समर्पण को भी हम देखते हैं। ठीक इसी प्रकार से रामके प्रति अनन्य सेवा एवं भक्ति अपने हृदय में संजोकर रखनेवाले उन सारे पात्रों का भी चित्रण हुआ है जिसके माध्यम से काव्यकार गोस्वामी तुलसिदास ने भक्ति का वह उदाहरण प्रस्तुत किया है जिसके कारण तत्कालीन राम-भक्ति परंपरा ही भारतीय साहित्य एवं समाज में चल पड़ी है।

पूर्व में भक्ति की व्याख्या करते हुए यह कहा गया है कि भक्ति का अर्थ विशेष प्रेम अथवा सेवा है जो अपने आराध्य के प्रति अविचलित भाव से प्रकट होती है। अर्थात् अपने आराध्य के प्रति प्रेम से आह्लादित होकर उनकी दिव्य प्रेममयी सेवा में तत्पर हो जाए उसे भक्ति कहते हैं। तुलसीदास जिस प्रकार राम के अनन्य भक्त थे, उसी प्रकार अपनी वाणी से तथा कर्म से उनकी प्रेममयी सेवा में संलग्न भी थे। उनकी यह भक्ति 'रामचरितमानस'महाकाव्य के सभी प्रमुख पात्रों में देखने को मिलता है उनका प्रत्येक रामभक्त पात्र राम की हर प्रकार से सेवा करता है, भक्ति करता है। यह भक्ति नौ प्रकार से प्रकट होती है। यथा- श्रवणम्, कीर्तनम्,

स्मरणम्, पाद-सेवनम्, अर्चनम्, दास्यम्, सख्यम् तथा आत्मनिवेदनम् । तुलसीदास ने केवल राम के मुख से शबरी को इन नौ-विधियों की विस्तृत व्याख्या ही नहीं करवाई है बल्कि उनका प्रत्येक पात्र इन विधियों का साक्षात् प्रयोग भी है । जैसे हनुमान की दास्य भावना, केवट का पद-प्रच्छालन, अंगद का समर्पण, सुग्रीव का संख्य भाव आदि इसके प्रबल प्रमाण ही तो हैं ।

तुलसीदास के 'रामचरितमानस'में राम-भक्ति तथा सेवा भाव का चित्रण एवं उस पर विचार करना भी आवश्यक है । तुलसीदास के 'रामचरितमानस' का प्रत्येक राम-भक्त पात्र भक्ति का ऐसा उदाहरण प्रस्तुत करता है जो समाज में लोककल्याणकारी भक्ति भावना की नींव बन जाता है । इन सभी पात्रों का तथा उनकी भक्ति भावना का निरूपण यहाँ नीचे किया जाएगा । विचार योग्य बात यह है कि तुलसीदास भी एक राम-भक्त कवि थे । भक्ति मार्ग के महत्वपूर्ण चार सम्प्रदायों में 'श्री-सम्प्रदाय' के 'विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त' का प्रभाव इन पर प्रत्यक्ष प्रकट है ।'श्री-सम्प्रदाय' में विशिष्टाद्वैतसिद्धान्त के अनुसार पुरुषोत्तमब्रह्म सगुण रूप में पूज्य हैं । तुलसीदास ने तो निर्गुण और सगुण दोनों की विवेचना यहाँ अपने महानतम ग्रंथ 'रामचरितमानस' में किया है । परन्तु उनके अनुसार सगुण ही सर्वश्रेष्ठ है । जाम्बवानद्वारा जब निर्गुण ब्रह्मकी शिक्षा देते हुए कहते हैं कि श्रीराम को मनुष्य न माने,उन्हें निर्गुण ब्रह्म अजेय और अजन्मा समझे-

जामवंत अंगद दुख देखी। कहीं कथा उपदेस बिसेषी ॥

तात राम कहूँ नर जनि मानहु । निर्गुनब्रह्म अजित अज जानहु ॥(तुलसीदास 2015:707)

जाम्बवान पुनः राम को निर्गुण ब्रह्म बता कर अपने को बड़ा भाग्यवान बताते हैं कि उन्हें सगुण ब्रहम श्री राम के दर्शन का तथा सामीप्य कासौभाग्य प्राप्त हुआ-

हम सब सेवक अति बड़भागी । संतत सगुनब्रह्म अनुरागी ॥(तुलसीदास 2015:707)

'उत्तरकाण्ड' में भी काकभुशुंडि ने लोमश मुनि को निर्गुण ब्रहम के स्थान पर सगुण ब्रह्म की उपासना में सच्चा सुख बताया था, जिसके फलस्वरूप ऋषि ने काकभुशुंडि को आशीर्वाद भी दिया था । इस प्रकार तुलसीदास ने निर्गुण और सगुण दोनों को एक बताकर समन्वय करते हुए भी सगुण भक्ति की प्रगाढ़ महिमा का गुणगान किया है । अतः कहा जा सकता है कि तुलसीदास विशिष्टाद्वैत सिद्धांत के पोषकसगुणोंपासक रामभक्त है।

भक्ति-काल के चारों सम्प्रदायों का प्रधान लक्ष्य या सिद्धान्त विष्णु या हरि की भक्ति है । जैसा कि मैंने पूर्व में ही प्रह्लाद महाराज केउपदेश, 'शब्दकोश', 'भक्तिरसामृतसिंधु', 'हरिभक्ति-सुधोदय', 'श्रीमद्भागवतम्', 'नारद-भक्ति-सूत्र', इत्यादि में वर्णित भक्ति शब्द कीव्याख्या में स्पष्ट किया है कि भक्ति से आशय अपने आराध्य के प्रति विशेष प्रेम या श्रद्धा हैं । इस प्रेम या सेवा के पालन कीनौविधियाँ बतायी गयी हैं;- श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद-सेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन ।महत्वपूर्ण बात यह है कि इन विधियों में किसी एक विधि का भी अगर एक साधारण भक्त पालन करे या आचरण करे तो उस भक्त का उद्धार हो जाता है। यह बात स्वयं भगवान राम शबरी को 'रामचरितमानस' के अरण्यकांड के पृष्ट संख्या 668 में बताते हैं कि इन नवों में से जिनके हृदय में एक भी भक्ति  होती है, वह स्त्री-पुरुष, जड़-चेतन कोई भी हो वही भगवान को अत्यन्त प्रिय है । फिर शबरी में तो सभी प्रकार की भक्ति दृढ़ हैं । अतएवं जो गति योगियों को भी दुर्लभ है, वही आज शबरी के लिए सुलभ हो गयी है-

नव महूँ एकउ जिन्ह कें होई । नारि पुरुष सचराचर कोई ॥

सोइ अतिसय प्रिय भामिनि मोरें । सकल प्रकार भगति दुढ़ तोरें ॥

जोगि बृंद दुरलभ गति जोई। तो कहूँ आजु सुलभ भइ सोई ॥(तुलसीदास 2015:688)

अतः यहाँ पर भगवान राम स्वयं कह रहे हैं कि इन नौ-विधियों में से किन्ही एक विधि द्वारा भी भक्त भगवान की प्राप्ति कर सकता हैं, अपने जीवन को सफल बना सकता है । शबरी में केवल एक ही नहीं वह सारे प्रकार की भक्ति थी । उनसभी विधियों को उसने अपने अनुकूल बनाकर सब विधि द्वारा ही भगवान की सेवा की है । इसी कारण उनकी भक्ति सरहनीय तथा वह भी युगों-युगों से पूजनीय हैं । केवल शबरी में ही नहीं बल्कि भरत, सीता, विभीषण, हनुमान, लक्ष्मण आदि सभी में ही नवधा भक्ति के समस्त प्रकार यथावत विद्यमान हैं । भरत की भक्ति पर विचार करते हुए श्री जयदयाल गोयंदका लिखते हैं- "प्रह्लाद के द्वारा कथित नवधा भक्ति के सारे गुण परम भक्त भरत में विद्यमान है ।"(गोयंदका 2019:57)

दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि कोई युग अपने साथ कुछ प्रवृत्तियों और कुछ दोषों को समेटे हुए काल की गति के अनुरूप आगे बढता जाता है । प्रत्येक युग में कुछ ऐसे-ऐसे विचारक अवशय हुए हैं जिन्होंने प्राचीनकालीन मान्यताओं को अपनाया भी हैं तथा आधुनिक सन्दर्भ में उसके प्रायोगिक प्रयोजन पर विचार करते हुए तत्कालीन परिस्थिति के अनुरूप ढालकर उन मान्यताओं में किंचित परिवर्तन को भी स्थान अवश्य दिया है । ये परिवर्तन सर्वथा परिस्थिति के अनुकूल तथा सर्वग्राही भी हैं। कहने का तात्पर्य केवल यही बताना है कि जिन नौ विधियों का प्राचीन कालीन सम्पूर्ण पौराणिक साहित्य यथानुरूप अनुसरण करते हुए वर्णन करती आ रहीहैंउन्हीं प्राचीन विधियों का काव्य जगत के अमिताभ गोस्वामी तुलसीदास ने अपने तत्कालीन परिस्थितियों को देखते हुए तथा समस्त लोक कल्याण के लिए किंचितपरिवर्तन कर स्थापित किया हैं ।उदाहरनार्थपौराणिक मान्यता अनुसार श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद-सेवन, अर्चन, दास्य, सख्य तथा आत्मनिवेदन को सभी नौ विधि रूप में ग्रहण किया गया है । गोस्वामी तुलसीदास ने इन नौ विधियों का अपने

काव्य'रामचरितमानस' में व्यावहारिक रूप में पूर्णतया पालन दिखाया है । परन्तु इनके नाम लोक कल्याण हेतु थोड़ा अलग कर के विशिष्ट रूप से वर्णन है । 'रामचरितमानस' के अरण्यकांड में पृष्ठ संख्या 667 में एक उदाहरण प्रमाणित करता है ।यहाँ पर तुलसीदास लिखते हैं कि पहली भक्ति है संतो का सत्संग । दूसरी भक्ति प्रभु-कथा-प्रसंग से प्रेम । गुरु के चरणों की सेवा तीसरी भक्ति है । चौथी भक्ति कपट त्यागकर,छोडकर प्रभु राम के गुणों का गान करना।प्रभु के नाम का जाप और उनमें दुढ़ विश्वास पाँचवी भक्ति है । छठी भक्ति है इंद्रियों का निग्रह करना, शील स्वभाव रखना, गलत कार्य से  वैराग्य और निरंतर संत-महात्माओं के धर्म में लगे रहना ।सातवीं भक्ति है जगत राम-मयदेखना और संतो को प्रभु से भी अधिक मानना ।आठवीं भक्ति जो कुछ मिल जाय उसी में संतोष करना तथा पराया दोष न देखना ।कपट त्यागकर सबके साथ सरल व्यवहार करना तथा हृदय में प्रभु का भरोसा रखना और किसी भी अवस्था में हर्ष औरविषाद का न होना नौवीं भक्ति है-

प्रथम भगति संतन्ह कर संगा । दूसरी रति मम कथा प्रसंगा ॥

गुर पद पंकज सेवा तीसरि भगति अमान ।

चौथि भगति मम गुन गन करइ कपट तजि गान ॥

मंत्र जाप मम दुढ़ बिस्वासा । पंचम भजन सो बेद प्रकासा ॥

छठ दम सील बिरति बहु करमा । निरत निरंतर सज्जन धरमा ॥

सातवंसम मोहि मय जग देखा । मोतें संत अधिक करि लेखा ॥

आठवं जथालाभ संतोषा । सपनेहूँ नहिं देखइ परदोषा ॥

नवम सरल सब सन छलहीना । मम भरोस हियं हरष न दीना||(तुलसीदास 2015:667)

अतः यहाँऊपर उनही नौं विधियों को परिस्थिति अनुकूल कुछ नवीन रूप में ढालते हुए तुलसीदास सत्संग, कीर्तन, सेवा, गुणगान, कथा में रुचि, जप, भजन,इंद्रिय-निग्रह तथा श्रीराम पर ही भरोसा बनाए रखने

को कहते हैं। ये प्रसंग केवल शबरी माता से ही नहीं बल्कि लक्ष्मण आदि से भी कहते हैं। अतः इन नौ विधियों, जो कि भक्ति का मूल है,उन्हींविधियों की तराजू में रखकर हम 'रामचरितमानस'में राम-भक्ति विषय पर प्रकाश डालेंगे तथा 'रामचरितमानस' के पात्रोंकी भक्ति-भावना के माध्यम से विषय की विवेचना करेंगे । यथा-

### 3.7.1 श्रवण

श्रवण का अर्थ होता है 'सुनना' । यहाँ सुनना शब्द आध्यात्मिक कथाओं के तथा भक्तों के दिव्य उपदेशों को सुनकर अपनी भक्ति को सुदृढ़ करने की बात कही गयी है ।श्रील प्रभुपाद 'श्रीमद्भागवतम्'(7.5) में एक स्थान पर लिखते हैं-

> श्रीभगवान् के पवित्र नाम को सुनना(श्रवणम्) भक्ति का शुभारंभ है । यद्यपि सभी नौ विधियों में से कोई भी एक विधि पर्याप्त होती है;किंतु क्रमानुसार भगवान् के पवित्र नाम का श्रवण ही भक्ति का प्रारंभ है ।(प्रभुपाद, श्रीमद्भागवतम्, सप्तम स्कंध 2018:208)

स्वामी श्री अच्युतानंद अपनी पुस्तक 'नवधा भक्ति' में लिखते हैं कि 'कथा श्रवण में मनोयोग यानि प्रेम होना चाहिए(अच्युतानंद 2005:21)

श्री जयदयाल गोयंदका अपनी कृति 'नवधा भक्ति' में श्रवण भक्ति की व्याख्या करते हुए लिखते हैं कि 'भगवान के प्रेमी भक्तों द्वारा कहा गया भगवान् के नाम, रूप, गुण, लीला आदि कथाओं का श्रद्धा और प्रेम से श्रवण कर के मुग्ध हो जाना ही श्रवण-भक्ति का स्वरूप है ।(गोयंदका 2019:09)

'रामचरितमानस'के बालकाण्ड में शिव-पार्वती-संवाद में ही हमें सर्वप्रथम श्रवण-भक्ति की महिमा का प्रसार दिखने लगता है। एक प्रसंग में राम के सीता वियोग जनित करुण दशा को देखकर शिव उन्हें प्रणाम करते हैं तभी सती के मन में संदेह होता है कि शिव स्वयं देवादीदेव महादेव हैं, पूजनीय हैं तथा जिनकी पूजा समस्त संसार करता है। वे ही महादेव आज एक पत्नी वियोग में व्याकुल साधारण मनुष्य की वंदना कर रहे हैं। अतः सती के संदेह को दूर करते हुए महादेव उन प्रभु श्री राम के गुण समूहों की चर्चा करते हैं। सती के मन में राम की परीक्षा लेने का संकल्प लेकर जब वें राम से मिलती हैं तभी राम के असंख्य रूप तथा लीलाओं का मायाजाल देख वे विकल हो जाती हैं इस प्रकार उनका भ्रम दूर हो जाता है और वे महादेव से कहती हैं कि आपकी चंद्रमा की किरणों के समान शीतल वाणी सुनकर उनके अज्ञानरुपि शरद ऋतु की धूप की उष्णता मिट गयी।शिवजि की वाणी सुनकर सती का सब सन्देह दूर हो गया। अब राम का यथार्थ स्वरूप उनकी समझ मे आ गया-

पुनि पुनि प्रभु पद कमल गहि जोरि पंकरुह पानि।
बोलीं गिरिजा बचन बर मनहुं प्रेम रस सानि॥
ससि कर सम सुनि गिरा तुम्हारी। मिटा मोह सरदातप भारी।
तुम्ह कृपाल सबु संसउ हरेऊ। राम स्वरूप जानि मोहि परेऊ॥(तुलसीदास 2015:131)

इस प्रकार से सती का भ्रम श्री राम की कृपा तथा भक्ति के प्रताप से शिव ने दूर किया।

इसी मानस में आगे चलकर शिव ने पूरी राम कथा को पार्वती के आग्रह करने पर सुनाया। सम्पूर्ण कथा का श्रवण कर पार्वती के मन का भ्रम उड़ गया तथा उनके मन में श्री राम के प्रति अमृत-तुल्य-भक्ति दृढ़ रूप से प्रतिष्ठित हो गया। इस प्रसंग का स्पस्ट उदाहरण हमें मानस के 'उतरकाण्ड' में देखने को मिलता है। यहाँ सब कथा सुनकर पार्वती के हृदय को बहुत अच्छा लगता है। वे बोलती हैं कि स्वामी की कृपा से उनका सन्देह दूर

हो गया और राम के चरणों में नवीन प्रेम प्रकट हो  गया है। उन्हीं की कृपा से अब पार्वती भी कृतार्थ हो गईं हैं। उनमें भी रामभक्ति उत्पन्न हो गई और उनके सम्पूर्ण कलेश नष्ट हो गए-

सुनि सब कथा हृदय अति भाई। गिरिजा बोली गिरा सुहाई॥

नाथ कृपाँ मम गत संदेहा। राम चरण उपजेउ नव नेहा॥

मैं कृतकृत्य भइऊं अब तव प्रसाद बिस्वेस।

उपजी राम भगतिदृढ बीते सकल कलेस॥(तुलसीदास 2015:1044)

अतः राम-भक्ति की महिमा के श्रवण से ही पार्वती का हृदय निर्मल हो गया तथा सभी संदेह भी दूर हो गए और उनके हृदय में राम-भक्ति उत्पन्न हो गयी।

तुलसीदास द्वारा वर्णित राम-शबरी प्रसंग में राम शबरी को नवधा भक्ति कहते हुए भक्ति की व्याख्या करते हैं और सत्संग की महिमा का बखान करते हैं। श्री  जयदयाल गोयंदका मानस के इसी प्रसंग का विश्लेषण करते हुए कहते हैं कि 'श्रवण-भक्ति महापुरुषों के संग के बिना प्राप्त होना कठिन है।(गोयंदका 2019:10)

श्रवण भक्ति के माध्यम से केवल पार्वती का ही नहीं अपितु काकभुशुंडि, गरुण,यज्ञवल्क्य तथा भरद्वाज मुनि आदि अनेकों भक्तों का उद्धार हुआ है।'रामचरितमानस'की सम्पूर्ण कथा में राम के गुणों का स्मरण कर धन्य होने की बात देखी जाती है। काकभुशुंडि ने गरुण को राम-कथा श्रवण के माध्यम से अपने उद्धार की कथा बताते हुए 'उतरकाण्ड' में कहा है कि जब पिता-माता काल की गति में समाहित हो गए तब वेभक्तों की रक्षा करने वाले श्रीराम का भजन करने के लिए वन में चले आयें। वनमें जहां भी मुनियों के आश्रम दिखते, वहीं वे जाकर उन्हें सिर नवाते। उनसे वे श्रीरामके गुणों की कथाएँ पूछते। मुनि कहते और वेहृदय से सुनते। इस प्रकार वे सदा-सर्वदा हरि के गुणों का श्रवण करते। शिव की कृपा से उनकी सर्वत्र अबाधित गति थी। उनकी पुत्र,धन

और मन कीगहरी प्रबल वासनाएँ समाप्त हो गईं और हृदय में एक यही लालसा अत्यंत बढ़ गयी की जब श्रीराम के चरण कमलों के दर्शन पाएँ तब अपना जन्म सफल हुआ समझें-

भए कालबस जब पितु माता । मैं बन गयऊँ भजन जनत्राता॥

जहँ जहँ बिपिन मुनिस्वर पावऊँ। आश्रम जाइ जाइ सिरु नावऊँ॥

बूझऊँ तिन्हहि राम गुन गाहा। कहहिं सुनऊँ हरषित खगनाहा॥

सुनत फिरऊँ हरि गुन अनुबादा। अब्याहत गति संभु प्रसादा॥

छूटी त्रिबिधि ईषना गाढ़ी। एक लालसा उर अति बाढ़ी॥

राम चरन बारिज जब देखौं। तब निज जन्म सफल करि लखौं॥(तुलसीदास 2015:1015)

इस प्रकार राम कथा के श्रवण मात्र से ही काकभुशुंडि का हृदय पवित्र हो गया और उनके हृदय में प्रेमाभक्ति ने स्थान ग्रहण किया।

'उत्तरकाण्ड' में ही आगे चलकर काकभुशुंडि अपनी दशा को व्यक्त करते हुए कहते हैं किगुरु के वचनों का स्मरण करके ही उनका मन राम के चरणों में लगा । वेप्रत्येक छण प्रेम प्राप्त कर रघुनाथजी का यश गाते फिरते हैं,-

गुर के बचन सुरति करि राम चरन मनु लाग।

रघुपति जस गावत फिरऊँ छन छन नव अनुराग ॥(तुलसीदास 2015:1016)

इस प्रकार से श्रवण भक्ति के माध्यम से ही यहाँ काकभुशुंडि का उद्धार हो गया। उनके हृदय में भी राम भक्ति और प्रेम उमड़ पड़ा ।

काकभुशुंडि ने इसी प्रकार गरुड़ को राम कथा सुनाई थी। गरुड़ का भ्रम दूर हुआ और उनके हृदय में भी भक्ति तथा प्रेम का प्रसार हुआ था। काकभुशुंडि श्रीराम के गुण-समूहों की चर्चा करते हुए गरुड़ से उत्तरकाण्ड में

कहते हैं कि जो लोग श्री हरि की भक्ति को छोड़कर दूसरे उपायों से सुख चाहते हैं, वे मूर्खबिना जहाज के ही तैरकर महासमुद्र के पार जाना चाहते हैं-

सुनु खगेस हरि भगति बिहाई। जे सुख चाहहिं आन उपाई॥

ते सठ महासिन्धु बिनु तरनी। पैरि पार चाहहिं जड़ करनी॥(तुलसीदास 2015:1023)

अतः यहाँ पर काकभुशुंडि राम-भक्ति को छोड़कर जीवन सागर से पार उतरने का, मुक्ति का दूसरा कोई उपाय नहीं हैं बताते हुए राम कथा की अमृत धारा के प्रवाह में गरुड को स्नान कराते हैं।

शिव अपनी अर्धांगिनी पार्वती को यह कथा सुनाते हुए गरुड के हृदय की अवस्था को व्यक्त कर कहते हैं कि भुशुंडि के वचन सुनकर गरुड के हृदय से संदेह, शोक, मोह, भ्रम आदि कुछ भी नहीं रहा । राम के गुण-समूहों को सुनकर उन्हें परम शांति मिली-

सुनि भुसुंडि के बचन भवानी। बोलेउ गरुड हरषि मृदु बानी॥

तव प्रसाद प्रभु मय उर माहीं। संसय सोक मोह भ्रम नाहीं॥

सुनेऊँ पुनीत राम गुन ग्रामा। तुम्हरी कृपाँ लहेऊँ बिश्रामा॥(तुलसीदास 2015:1023)

इस प्रकार आगे भुशुंडि के वचन सुनकर तथा राम चरणों में उनकी इतनी भक्ति-भावना को देखकर गरुड स्वतः प्रेम सहित कहते हैं-

सुनि भुसुंडि के बचन सुभ देखि राम पद नेह।

बोलेउ प्रेम सहित गिरा गरुड़ बिगत संदेह॥(तुलसीदास 2015:1040)

काकभुशुंडि को गरुड़ कहते हैं कि राम-भक्ति-रस में सनी हुई उनकी वाणी सुनकर वे कृतकृत्य हो गए । श्री राम के चरणों से प्रेम हो गया और माया से उत्पन्न सारी विपत्ति दूर हो गयी। इस प्रकार वे उनके चरणों की बार-बार वन्दना ही करते हैं,-

मैं कृतकृत्य भयऊँ तव बानी। सुनि रघुबीर भगति रस सानी॥

राम चरन नूतन रति भई। माया जनित बिपति सब गई॥

मोह जलधि बोहित तुम्ह भए। मो कहँ नाथ बिबिध सुख दए॥

मो पहिं होइ न प्रति उपकारा। बंदऊँ तव पद बारहिं बारा॥(तुलसीदास 2015:1040)

अतः इस प्रकार से हमने देखा की राम कथा या गुणों के श्रवण मात्र से भक्तो का उद्धार हुआ है। इसीलिए श्रवण-भक्ति प्रथम चरण में आता है। इस विधि के द्वारा भी राम की असीम कृपा का लाभ भक्तों को मिल जाता है।

### 3.7.2कीर्तन

भगवान के नाम तथा महिमा के श्रवण के पश्चात् भगवान की दिव्य लीलाओं का तथा भगवान के नाम का कीर्तन द्वितीय पद्धति है । आज से पाँच सौ वर्ष पूर्व बंगाल में चैतन्य महाप्रभु ने यही आदेश संसार को दिया था । उनकी वाणी इस प्रकार है-

तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुता ।

अमानिना मानदेन कीर्तनीयःसदा हरि ।।(प्रभुपाद, श्रीमद्भागवतम्, सप्तम स्कंध 2018:211)

अर्थात् भक्त घास जैसे तृण जो पैरों के नीचे पडकर भी पुन्हः खड़ा हो जाता है परंतु कोई नुकसान नहीं पहुँचाता विनम्र होना चाहिए तथा पेड़-पौधे की ही भाँति परोपकारी होन चाहिए और किसी भी आदर-सत्कार या लालच के बगैर सबको चाहे छोटा हो या बड़ा मान-सम्मान देते हुए अपने मुख में सदा हरि नाम का कीर्तन करना चाहिए । उन्होंने हरि नाम की महिमा बताते हुए आगे कहा है कि, इस कपटीकलियुग में उद्धार का एकमात्र साधन भगवान् के नाम का कीर्तन है । कोई अन्य उपाय नहीं है-

हरेर्नाम हरेर्नामहरेर्नामैव केवलम् ।

कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ।।

(प्रभुपाद, श्रीमद्भागवतम्, सप्तम स्कंध 2018:210)

इसीलिए तुलसीदास भी नाम को स्पष्ट रूप से महत्व देते हैं । नाम जप को सभी क्रियाओं से श्रेष्ठ कहते हैं । उनके 'रामचरित मानस'के बालकांड क एक उदाहरण द्रष्टव्य है जहाँ तुलसीदास नाम की महिमा का बखान करते हुए कहते हैं कि, कलियुग में राम का नाम मन की चाह अनुरूप फल देनेवाला और मुक्ति प्रदान करने वाला है । वे स्वयं का उदाहरण देकर कहते हैं कि वे भी तुलसी-सा पवित्र हो गए-

नामु राम को कलपतरु कलि कल्यान निवासु ।

जो सुमिरत भयो भाँग तें तुलसी तुलसीदासु ।।(तुलसीदास 2015:48)

भक्ति की नौ विधियों में कीर्तन अर्थात भगवान के नाम, महिमा तथा उनके गुण आदि का गायन या कथा कहना ही द्वितीय विधि है। शंकर, काकभुशुंडि, कीरात, कोल-भील, केवट तथा समस्त प्रजा ही राम कागुण कीर्तन करते नहीं थकते । राम का स्वरूप तथा उनका स्वभाव जिस प्रकार अतुलनीय है ठीक उसी प्रकार अपने भक्तों के प्रति उनका स्नेह भी सराहनीय है। समस्त संसार ही उनके इन गुणों का कीर्तन करता फिरता है। श्री जयदयाल गोयंदका कीर्तन की महिमा की व्याख्या करते हुए लिखते हैं "भगवान के नाम, रूप, गुण, प्रभाव, चरित्र आदि का प्रेम और श्रद्धा से उच्चारण करते समय मुग्ध हो जाना ही कीर्तन भक्ति का स्वरूप है ।"(गोयंदका 2019:15)

शंकर ने पार्वती के समक्ष भगवान के यश की गाथा का कीर्तन किया था। भरत, केवट, हनुमान, विभीषण तथा अंगद ने राम भक्ति की कथा का कीर्तन करके अपने जीवन को ही अमर बना लिया। भगवन्नाम के

कीर्तन की महिमा का बखान करते हुए 'बालकांड' में तुलसीदास लिखते हैं कि सरस्वती, शेष, शिव, ब्रह्मा, शास्त्र, वेद और पुराण- ये सब 'नेति-नेति' कहते हुए सदा भगवान का गुणगान किया करते हैं-

सारद सेस महेस बिधि आगम निगम पुरान।

नेति नेति कहि जासु गुन करहिं निरंतर गान॥(तुलसीदास 2015:33)

अतः यहाँ पर राम के गुणों का कीर्तन करते हुए शिव, ब्रह्मा, वेद, शास्त्र सभी महान बन गए । उन भगवान का कीर्तन करते हुए सब पार नहीं पा सके । उन भगवान के नाम, गुण आदि का कीर्तन ही मूल आधार है।

श्री राम के गुणों का गान करते हुए आगे तुलसीदास लिखते हैं कि राम खोयी वस्तु को भी फिरसे प्राप्त करानेवाले गरीबनिवाज़ हैं । वे ही सर्वशक्तिमान और सबके स्वामी हैं तथा उनका स्वभाव सरल है । भगवान् के यश का वर्णन करके सभी मोक्षको प्राप्त करते हैं-

गई बहोर गरीब नेवाजू। सरल सबल साहिब रघुराजू॥

बुध बरनहिं हरि जस अस जानी। करहिं पुनीत सुफल निज बानी॥(तुलसीदास 2015:34)

अतः श्री हरि या राम के यश का कीर्तन कर बुद्धिमान लोग भी अपनी वाणी को पवित्र तथा अपने मन को शुद्ध और अपनी आत्मा को श्री हरि की सेवा में निरत करते हैं।

भगवान राम के नाम का कीर्तन वाल्मीकि ने भी किया था तथा उनहोंने राम-नाम जपकर ही अपने जीवन का कल्याण किया था। 'बालकाण्ड' में ही एक स्थान पर इस कथन की पुष्टि मिल जाती है जहाँ वाल्मीकि रामनाम के प्रताप को जानते हैं ।उन्होनेंउल्टा नाम ('मरा','मरा') जपकर ही अपने जीवन को पवित्र किया था ।

शिव के द्वारा कहे जाने पर कि राम नाम हजारों नाम के समान है, पार्वती भी राम नाम को पति के साथ ही जपती हैं। नामके प्रभाव को शिव भली भाँति जानते हैं, इसीलिए विश भी उनके लिए अमृत हो गया-

जान आदिकबि नाम प्रतापू। भयउ सुद्ध करि उलटा जापू॥

सहस नाम सम सुनि सिव बानी। जपि जेईं पिय संग भवानी॥

हरषे हेतु हेरि हर ही को। किय भूषन तिय भूषन ती को॥

नाम प्रभाउ जान सिव नीको। कालकूट फलु दीन्ह अमी को॥(तुलसीदास 2015:41)

इस प्रकार कीर्तन संसार में साधारण मनुष्यों का ही उद्धार नहीं करता बल्कि स्वयं शिव, ब्रह्मा, शक्ति आदि को भी शक्ति और भक्ति प्रदान करता है।

कलिकाल के भीषण विभ्रांत युग में राम नाम के कीर्तन का आसरा ही सबका एक मात्र सहारा है। तुलसीदास कलियुग की विभीषिका का वर्णन करते हुए राम नाम के कीर्तन की महिमा को व्यक्त करते-करते 'बालकाण्ड' में एक स्थान पर कहते हैं किरामनाम स्वयं श्री नरसिंह भगवान हैं। कलियुग रूपी हिरण्यकशिपु को मारकर जप करनेवालों की रक्षा वे स्वयं करेंगें-

राम नाम नरकेसरी कनककसिपु कलिकाल।

जापक जन प्रहलाद जिमि पालिहि दलि सुरसाल।।(तुलसीदास 2015:49)

अतः यहाँ भी भगवान के नाम कीर्तन आदि को महत्वपूर्ण बताया गया है, जिस नाम कीर्तन के सहारे कलि दैत्य का भी संहार किया जा सकता है।

श्री जयदयाल गोयंदका 'नवधा भक्ति' में कहते हैं कि 'जिस प्रकार पपीहा मेघ के लिए लालायित होकर पुकारता रहता है ठीक उसी प्रकार भगवान की प्राप्ति के लिए नाम और गुण का कीर्तन करना चाहिए।(गोयंदका 2019:20)'रामचरितमानस' में भी सभी पत्र अपने आराध्य राम के गुण-कीर्तन में अत्यधिक आनंदित रहते हैं।

### 3.7.3स्मरण

अपने आराध्य को शुद्ध हृदय से स्मरण करना ही तृतीय विधि है। भक्ति की ये विधियाँ अन्यतम हैं जो किसी भी साधक को उसके परमार्थ में सहायक होती हैं। स्मरण भक्ति विधि बहुत ही प्रभावशाली और सभी भक्तों के हृदय की मूल भावना ही है। प्रत्येक भक्त अपने अन्त: करण में अपने आराध्य का स्मरण नित्य करता रहता है। एक भक्त के हृदय की परम अभिलाषा यही होती है कि सच्चीदानन्द भगवान उसके हृदय के अन्तः करण में सदा निवास करें। गीता में भगवान कृष्ण 8.5 श्लोक में कहते हैं कि जो अंत में उन भगवान का स्मरण करते हुए अपने शरीर का त्याग करता है, वह तुरन्त उन्हें प्राप्त करता है। इसमें तनिक भी संदेह नहीं है-

अन्तकालेच मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।

यः प्रयाति स मद्भावंयाति नास्त्यत्र संशय: ॥(प्रभुपाद, श्रीमद्भगवद्गीता यथारूप, 2011:275)

अर्थात जो भी भक्त भगवान का स्मरण करता है,उन्हें अपने हृदय के अंत:करण में स्थापित कर उन्हीं भगवान का स्मरण करते हुए अपनी देह का त्याग करता है, वह निश्चित ही श्रीभगवान को प्राप्त होता है, उसे उसका परध धाम, परम गति मिल जाता है। इसलिए स्मरण भक्ति पद्धति का बड़ा ही महत्व है। हर भक्त की यही अभिलाषा रहती है कि वह भगवान का चिंतन करता हुआ उनका ही नाम लेकर देह त्याग करे।जयदयाल गोयंदका स्मरण भक्ति की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि 'प्रभु के नाम, रूप, गुण, लीला कथाओं आदि का जो

श्रवण किया गया है उसी का हृदय से मुग्ध होकर मनन करना ही स्मरण भक्ति का स्वरूप है ।(गोयंदका 2019:20)

'रामचरितमानस'के सभी पात्र यहाँ तक कि दुष्ट रावण,मारीच, बाली, कुंभकर्ण के प्राण त्यागने का उद्देश्य भी यही प्रमाणित करता है। 'रामचरितमानस' में राजा दशरथ, शबरी, भरत,समस्त ऋषि-मुनि सभी राम को अपने हृदय में बसाए हुए थे। राम के स्मरण रूपी विरह में ही उनके देह का पारमार्थिक उद्धार हुआ था। दशरथ की राम-भक्ति तो सराहनीय है। उनके हृदय में ही नहीं बल्कि उनके रोम-रोम में श्री राम का वास था। जब राक्षसों के संहार और ऋषि मुनियों के उद्धार के लिए विश्वामित्र राजा दशरथ से राम को माँगने आए। मुनि की वाणी सुनकर दशरथ व्याकुल हो उठे । उन्होनें मुनि से आग्रह करते हुए गौ-ब्राह्मण तो क्या अपने प्राणों तक का दान देने की बात कही, परन्तु राम को अपने नेत्रों से अलग नहीं करना चाहते थे। 'बालकाण्ड' में एक स्थान पर दशरथ की दशा को व्यक्त करते हुए तुलसीदास लिखते हैं कि मुनि चाहे तो पृथ्वी, गौ, धन और खजाना माँग लें,वे बड़े आनंद से आज अपना सर्वस्व दे देगें । राजा अपने प्राण तक भी देंगे । परंतु प्राणों समान पुत्रों में अति प्रिय राम तो देते न बनेगा-

मागहु भूमि धेनु धन कोसा। सर्बस देऊँ आजु सहरोसा॥

देह प्रान तें प्रिय कछु नाहीं। सोउ मुनि देऊँ निमिष एक माहीं॥

सब सुत प्रिय मोहि प्रान कि नाईं। राम देत नहिं बनइ गोसाईं॥(तुलसीदास 2015:206)

अतः दशरथ राम का वियोग सहन नहीं कर सकते। परन्तु जब कैकेयी के वरदान हेतु चौदह वर्ष का वनवास देने की बात हुई,तब राम का वियोग उनके देह त्याग का कारण बन गया। कैकेयी द्वारा राम से चौदह वर्ष के वियोग की बात सुनकर राजा दशरथ सुध-बुध खो बैठें । वे 'राम-राम' रटते हैं। उन्हीं का स्मरण करते हैं।

'अयोध्याकाण्ड' में दशरथ की दशा का कवि ने कुछ इस प्रकार से वर्णन किया है कि दशरथ'राम-राम रटते हुए व्याकुल हैं, जैसे कोई पंक्षी पंखके बिना बेहाल हो-

राम राम रट बिकल भुआलू। जनु बिनु पंख बिहंग बेहालू॥(तुलसीदास 2015:374)

यहाँ राजा दशरथ का राम को स्मरण करकेबिछोह होना प्राण जाने से भी ज्यादा भयानक और कष्टकर लग रहा है।

ऐसे ही राम का स्मरण करते हुए उनकी स्मरण भक्ति में लीन होकर राम-राम पुकारकर राजा का मन राम के वियोग में अपने प्राणों को कोसता है। कहता हैं कि राम राज्य छोड़कर मुझे त्यागकर चले गए परन्तु ये पापी शरीर जाते नहीं। राम का वियोग असहनीय होते हुए भी राम-वियोग में राम का स्मरण करते हुए देह त्याग करना महान बात है। राजा की गति जड़ जगत की दृष्टि से दयनीय दिखाने पर भी आध्यात्मिक जगत की दृष्टि में आदरणीय एवं बहुत ही महान है। इस प्रकार की भक्ति जो राम वियोग में शरीर का त्याग कर दे निश्चय ही संसार में पूज्य है। तुलसीदास ने दशरथ के देह त्याग को सफल बताया क्योंकि राम स्मरण में उनका उद्धार ही हुआ है ।'अयोध्याकाण्ड' का एक उदाहरण दृष्टव्य है-

राम राम कहि राम कहि राम राम कहि राम।

तनु परिहरि रघुबर बिरहँ राउ गयउ सुरधाम ॥

जिअन मरन फलु दसरथ पावा। अंड अनेक अमल जसु छावा॥

जिअत राम बिधु बदन निहारा। राम बिरह करि मरनु सँवारा॥(तुलसीदास 2015:473)

इस प्रकार यहाँ स्मरण भक्ति विधि भी परिलक्षित होती है। जयदयाल गोयंदका लिखते हैं कि 'जटायु पक्षी को भी भगवत स्मरण से परमगति मिली ।(गोयंदका 2019:27)

राम भक्ति की महिमा का बखान करते हुए ही 'अयोध्याकाण्ड' में एक स्थान पर लिखते हुए गोस्वामी तुलसीदास कहते हैं कि राम के स्मरण मात्र से ही ज्ञानी-मुनि अपना सब कुछ तिनके की तरह त्याग देते हैं-

सुमिरत रामहि तजहिं जन तृन सम बिषय बिलासु।(तुलसीदास 2015:460)

श्री जयदयाल गोयंदका तुलसीदास कृत 'रामचरितमानस' की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि 'तुलसी कृत रामायण में सुतीक्ष्ण की स्मरण भक्ति सराहनीय है । वे भगवान् के प्रेम में मग्न होकर मन-ही-मन उनका स्मरण करते हैं ।(गोयंदका 2019:26)

राम के वियोग से केवल राजा दशरथ ही नहीं बल्कि सारी प्रजा तथा मंत्री गण सभी भयंकर कष्ट भोगने लगे। सभी के हृदय में राम की छवी बसी हुई है और राम का ही स्मरण करते हुए प्राण को कोसते हैंकि ये निष्ठुर प्राण राम वियोग में निकल क्यूँ नहीं रहे हैं । 'अयोध्याकाण्ड' का ही एक दृश्य है जिसमें राम के परम प्रेमी, महान भक्त सुमंत्र राम का स्मरण करते हुए,उन्हें महल लौटाने में असमर्थ अपने जीवन को धिक्कारते हुए कहते हैं कि राम के बिना जीने में उनके जीवन का क्या अर्थ है ? पापी शरीर आखिर हमेशा तो जीवित नहीं रहेगा ? अच्छा होता कि वे राम के अयोध्या त्यागते ही निकाल जाते । अब तो उनकाजीवन अपयश को ही प्राप्त करेगा-

सोच सुमंत्र बिकल दुख दीना। धिग जीवन रघुबीर बिहीना॥
रहिहि न अंतहूँ अधम सरीरु। जसु न लहेउ बिछुरत रघुबीरु ॥
भए अजस अघ भाजन प्राना। कवन हेतु नहिं करत पयाना ॥
अहह मंद मनु अवसर चूका। अजहूँ न हृदय होत दुइ टूका॥(तुलसीदास 2015:463)

### 3.7.4 पाद-सेवन

भगवान की चरण सेवा से विभिन्न प्रकार की उपलब्धियाँ मिलती हैं। जैसे दर्शन, स्पर्श आदि का पूण्य लाभ इत्यादि।'श्रीमद्भागवतम्' के सप्तम स्कन्ध की व्याख्या करते हुए श्रील प्रभुपाद कहते हैं 'पाद सेवनम का अर्थ है, समय तथा परिस्थिति के अनुसार भगवान के चरण कमलों की सेवा में अपने को लगाना।(प्रभुपाद, श्रीमद्भागवतम्, सप्तम स्कंध 2018:206)

'नवधा भक्ति' के रचयिता श्री जयदयाल गोयंदका पाद-सेवनम-भक्ति की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि 'भगवान के स्वरूप अथवा मानस-मूर्ति के चरणों का श्रद्धापूर्वक दर्शन, चिंतन, पूजन आदि करते समय सेवा करना पाद-सेवन कहलाता है।(गोयंदका 2019:29)

भगवान श्री राम चन्द्र के चरण रजकी वन्दना, सेवा आदि भक्ति विधि 'पाद-सेवनम' कहलाती है। यह भक्ति स्वरूप हमें प्रायः हर पात्र में देखने को मिल जाता है। शबरी, सीता, लक्ष्मण, केवट, भरत इत्यादि सभी इस भक्ति पद्धति को भली प्रकार से करते हैं। शबरी तो अपने आराध्य प्रभु श्री राम की भक्ति में लीन होकर वन में उन्हीं राम की प्रतीक्षा करती हैं। जब राम वन यात्रा के समय सीता की खोज में उनको दर्शन देते हैं तब शबरी भगवान के सुन्दर स्वरूप को दर्शन कर उनके चरणों में लिपट जाती हैं। तुलसीदास ने इस मधुर प्रेम को कविता में बद्ध कर 'अरण्यकाण्ड' में प्रस्तुत किया है। तुलसी यहाँ लिखते हैं कि राम उनकी कुटिया में पधार कर उसका उद्धार करते हैं। मतंग ऋषि के वचनों को याद करके शबरी अत्यंत प्रसन्न हो उठती है। सुंदर साँवले कोमल शरीर वाले कमल-नयन राम और गोरे सुंदर कोमल लक्ष्मण को देखकर भक्ति-भाव से शबरी उनके चरणों में लिपट पड़ी। अपने आराध्य को देखकर शबरी के मुख से वचन नहीं निकलता है। वे प्रेम मग्न होकर सिर नवाकर आदरपूर्वक पग प्रक्षालन करती हैं। शबरी ने दोनों भाइयों को अत्यन्त रसीले और स्वादिष्ट कन्द, मूल और फल दिए। राम ने भी भक्ति-भाव में रमी शबरी के फल को प्रेमपूर्वक खाया-

ताहि देइ गति राम उदारा। सबरी कें आश्रम पगु धारा॥

सबरी देखि राम गृहँ आए। मुनि के बचन समुझि जियं भाए॥

सरसिज लोचन बाहु बिसालाम । जटा मुकुट सिर उर बनमाला॥

स्याम गौर सुंदर दोउ भाई। सबरी परी चरन लपटाई॥

प्रेम मगन मुख बचन न आवा। पुनि पुनि पद सरोज सिर नावा॥

सादर जल लै चरन पखारे। पुनि सुंदर आसान बैठारे॥

कंद मूल फल सुरस अति दिए राम कहूँ आनि ॥

प्रेम सहित प्रभु खाए बारंबार बखानि॥(तुलसीदास 2015:666)

इस प्रकार शबरी को परम धन्य कर उनकी भक्ति का मान बढ़ाने तथा उनका उद्धार करने हेतु भगवान राम स्वंय उसके घर पहुँचे और अपने पाद-पद्म की सेवा करने का अवसर दिया। शबरी की भक्ति भावना इतनी पवित्र और शुद्ध है कि राम ने स्वंय उसे नवधा-भक्ति का ज्ञान कराया तथा सब प्रकार से संतुष्ट होकर मृदु वचन बोले।

जैसा कि मैंने ऊपर उल्लेख करते हुए कहा कि भगवान की चरण-सेवा के माध्यम से उनके दर्शन, स्पर्श आदि का भी परम सौभाग्य मिलता हैं। 'रामचरितमानस' का केवट-प्रसंग श्रवण-पठन करके जगत में कौन श्रद्धालु है जिहके हृदय में राम-भक्ति और प्रेम की बाढ़ न आ जाये। केवट का प्रेम, राम चन्द्र के चरणों के प्रति जो विनम्रता तथा सेवा भाव है वह निश्चय ही अतुलनीय भक्ति-भावना से ओत-प्रोत और सरहनीय है। केवट के हृदय में राम के प्रति अतुलनीय भक्ति है। वह जानता है कि राम स्वंय परंम ब्रहम हैं । वे ही जगत के पालनहारी तथा इस भवसागर से पार उतारने वाले परम सनेही हैं । अतः वह अपने हृदय के प्रेम को राम-चरणों में समर्पित कर उनकी चरण सेवा का परम सौभाग्य प्राप्त करना चाहता है, वह स्वंय श्री राम द्वारा नाव माँगे जाने पर भी सेवा की इच्छा के अनुरूप नहीं ले जाता। वह उस सेवा के बदले में श्री राम के कमल-चरण-जुगल का प्रक्षालन

कर धन्य होने की अपनी अभिलाषा पूर्ण करना चाहते हैं । वह हठ भी करते हैं । वह अहिल्या के उद्धार के प्रसंग का व्यंग्य कर अपना भी उद्धार कराना चाहते हैं । वह कहते हैं कि वे राम का गुण जानते हैं । राम-चरण रेणु प्राप्त करके अहिल्या पत्थर से स्त्री बन गयी । अर्थात् तर गयी ।उसकी नाव भी स्त्री बन जाएगी । अर्थात् वह भी चरण-प्रक्षालन और उद्धार पाने का इच्छुक हैं-

मागी नाव न केवटु आना। कहइ तुमहार मरमु मैं जाना॥

चरन कमल रज कहूँ सबु कहई। मानुष करनि मूरि कछु अहई॥

छुअत सिला भइ नारि सुहाई। पाहन तें न काठ कठिनाई॥

तरनिउ मुनि घरिनी होइ जाई। बाट परइ मोरि नाव उड़ाई॥(तुलसीदास 2015:426)

यहाँ पर केवट श्री राम के स्वभाव को जानता हैं । वह अप्रत्यक्ष रूप से कहते हैं कि जब पत्थर जैसे कठोर को भी प्रभु ने अपनी भक्ति और चरण सेवा का सौभाग्य दिया तो वे तो काष्ठ जैसे सरल हैं । अतः उन्हें भी चरण प्रक्षालन  का सौभाग्य मिलना चाहिए।

अतः केवट इस प्रकार से अपनी भक्तिमय चरण सेवा के माध्यम से भगवान को प्रसन्न कर लेते हैं । केवट को लक्ष्मण के तीर का भी भय नहीं है। वह केवल चरण सेवा की अनुमति की याचना करते हैं । वह उतराई में किसी प्रकार के पुरस्कार की भी कामना नहीं करते । केवट कुछ इस प्रकार से अपनी भक्ति-भावना को व्यक्त करते हैं कि उन्हें सौगंध है कि अगर लक्ष्मण उन्हें तीर से मार भी दें तो भी वे प्रभु के चरण-प्रक्षालन के बिना उन्हें नाव में नहीं बैठाएंगे । उन्हें उतराई में परिश्रमिक भी नहीं चाहिए-

पद कमल धोइ चढ़ाइ नाव न नाथ उतराई चहौं।

मोहि राम राउरि आन दसरथ सपथ सब साची कहौं॥

बरु तीर मारहूँ लखनु पै जब लगि न पाय पखारिहौं।

तब लगि न तुलसीदास नाथ कृपाल पारु उतारिहौं॥(तुलसीदास 2015:426)

केवट जब पैर पखारने की आज्ञा पा जाते हैं तब मन भर के प्रेम से पैरों को पखार कर राम के चरण की सेवा करके नाँव पर बैठाकर पार उतार देते हैं। केवट इसी सेवा का आनन्द मन में भरकर संतुष्ट हैं। परन्तु राम नदी पार उतराई स्वरूप केवट को कुछ देना चाहते हैं । सीता ने प्रभु की सेवा में अँगूठी उतार कर दे दी। परन्तु महान भक्त केवट ने उतराई न ली। बल्कि उनहोंने जो वचन कहे उन्हें सुनकर राम अत्यन्त प्रसन्न हो गए। केवट राम से कहते हैं कि आज उन्होंनेसब सुख प्राप्त कर लिया है । साथ ही उनकेभौतिक दोष, दुख और दरिद्रता की आग आज बुझ गयी है। जीवन भर मजदूरी करने के पश्चात आज बहुत अच्छी मजदूरी राम ने उन्हें दे दी है । केवट अंगूठी नहीं लेतें-

नाथ आजु मैं काह न पावा। मिटे दोष दुख दारिद दावा ॥

बहुत काल मैं कीन्हि मजूरी। आजु दीन्ह बिधि बनि भलि भूरी॥

अब कछु नाथ न चाहिअ मोरें। दीनदयाल अनुग्रह तोरें॥(तुलसीदास 2015:402)

अतः चरण सेवा का जो रूप यहाँ केवटमें देखने को मिला वह अत्यन्त दुर्लभ है तथा यह एक महान आदर्श भी प्रस्तुत करता है।

श्री राम की भक्ति में अग्रणी सीता का स्वभाव अपने स्वामी के चरणों में इस प्रकार तन्मय है जैसा अन्यत्र कहीं नहीं है। सीता को केवल अपने प्राणप्रिय प्रभु श्री राम के चरणों कि सेवा में ही अनुराग है। जब राम को चौदह वर्ष का वनवास मिला तब सीता ने भी प्रभु का अनुसरण किया। सीता चाहतीं तो महल में ही रहकर सुख-भोग का आनन्द ले सकती थीं । परन्तु जिन्हें राम के चरणों की सेवा से अधिक अपने प्राण भी प्रिय न हो वह क्या राम के बिना रह सकतीहैं ? अतः सीता भी अनेकों प्रकार की युक्ति कर के प्रभु श्री राम के संग वन की राह में चल पड़ी। जब सभी वन की भयानकता का वर्णन करते हैं तब वे कहती है कि श्री राम चरणों से दूर रहने

से बढ़कर भयानक इस संसार में और कुछ भी नहीं। उन्होंने प्रभु के चरणों को देखकर जीवन जीने का आनंद कुछ इन शब्दों में व्यक्त किया है-

छिनु छिनु प्रभु पद कमल बिलोकी। रहिहऊँ मुदित दिवस जिमि कोकी॥(तुलसीदास 2015:398)

इस प्रकार सीता स्वामी के चरणों की परम अनुरागीनी हैं। वे स्वामी के चरणों की सेवा ही अपना परम धर्म मानने वाली वह भारतीय नारी हैं जिन्होंने स्त्री धर्म का ऐसा महानतम आदर्श प्रस्तुत किया जो इस संसार में आने वाले सभी युगों के लिए प्रेरणा और श्रद्धा का अनुपम वरदान बन पड़ा है। स्वामी के चरणों की सेवा में रत सीता कुछ इस प्रकार से अपने वन के सुख की चर्चा करती हुई कहती हैं कि स्वामी राम को प्रत्येक क्षण देख पाने के सुख से मार्ग में चलने में थकावट नहीं होगा । वे अपने प्रभु की सेवा करेंगी । वे दासी बनकर रातभर राम के चरण दबावेंगी-

मोहि मग चलन न होइहि हारी। छिनु छिनु चरन सरोज निहारी॥

सबहि भाँति पिय सेवा करिहौं। मारग जनित सकल श्रम हरिहौं॥

पाय पखारि बैठि तरु छाहीं। करिहऊँ बाउ मुदित मन माहीं॥

श्रम कन सहित स्याम तनु देखें। कहँ दुख समउ प्राणपति पेखें॥

सम महि तृन तरुपल्लव डासी। पाय पलोटिहि सब निसि दासी॥

बार बार मृदु मूरति जोही। लागिहि तात बयारि न मोही॥(तुलसीदास 2015:399)

इस प्रकार भगवान के चरण सेवा की भक्ति प्रत्येक भक्त में ही प्रगाढ़ होती है। केवट, सीता, लक्ष्मण आदि इस भक्ति के प्रत्यक्ष प्रमाण स्वरूप हैं।

### 3.7.5 अर्चन

मंदिरों में या घरों में स्थापित भगवान के अर्चाविग्रह की पूजा ही अर्चनम कहलाता है । श्री जयदयाल गोयंदका 'नवधा भक्ति' में अर्चन की व्याख्या करते हुए कहते हैं 'भगवान के स्वरूप का बाह्य समग्रियों से पत्र, पुष्प, चन्दन आदि द्रव्यों से श्रद्धापूर्वक पूजन करना ही अर्चन भक्ति है ।(गोयंदका 2019:34)

श्रील प्रभुपाद अर्चन भक्ति की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि 'अर्चनम का अर्थ है भगवान श्रीविष्णु की उसी रूप में पूजा करना, जैसा कि मंदिरों में होता है ।(प्रभुपाद, श्रीमद्भागवतम्, सप्तम स्कंध 2018:206)

अर्चन करते समय अपराधों से बचने की आवश्यकता होती है । यह विधि-भक्ति भी 'रामचरितमानस' के पात्रों में प्रत्यक्ष रूप में है। विभीषण तथा भरत इसके प्रबल प्रमाण स्वरूप हैं । केवल भरत और विभीषण ही नहीं बल्कि दंडकारण्य में भी समस्त ऋषि मुनि एक मात्र प्रभुश्रीराम की भक्तिमय सेवा में लीन हैं । यह सेवा अर्चनम विधि की है। भरत के हृदय में राम के लिए अत्यन्त प्रेम है। वे 'अयोध्याकाण्ड' में एक स्थान पर कहते हैं कि हरि की भक्ति के बिना जप और योग उसी प्रकार से व्यर्थ है जिस प्रकार रोगी के लिए भोग । आत्मा के बिन शरीर का होना व्यर्थ है ठीक उसी प्रकार भरत के लिए राम के बिना जीवन भी व्यर्थ ही है-

सरुज सरीर बादि बहु भोगा। बिनु हरिभगति जायं जप जोगा॥
जायं जीव बिनु देह सुहाई। बादि मोर सबु बिनु रघुराई॥(तुलसीदास 2015:491)

भरत के हृदय में राम से बिछुड़ने का अत्यन्त गहन दुःख है। जब राम को वापस वन से लौटाने के लिए अरण्य जाते हैं, तब निषाद राज गुह के निवास स्थान पर जहां वृक्ष के नीचे प्रभु ने रात्री शयन किया था उस स्थान को देखकर उसकी परिक्रमा कर के मस्तक नवा कर प्रणाम कर उसकी अर्चना करते हैं। कुशों की साथरी को देखकर प्रणाम कर उसकी प्रदक्षिणा करते हैं और प्रभु के चरण चिन्हों के रज को अपनी आँखों में लगते हैं-

कुस साँथरी निहारि सुहाई। कीन्ह प्रनामु प्रदछिन जाई॥

चरन रेख रज आँखिन्ह लाई। बनइ न कहत प्रीति अधिकाई॥(तुलसीदास 2015:508)

जब भरत राम को राजमहल लौटा लाने में असमर्थ हुए और उनका मन दुखी हुआ तभी मर्यादा के अन्यतम महापुरुष श्री राम ने अपनी खड़ाऊँ दे दी । 'अयोध्याकाण्ड'का उदाहरण दृष्टव्य है-

प्रभु करि कृपा पाँवरीं दीन्हीं। सादर भरत सीस धरि लीन्हीं ॥(तुलसीदास 2015:608)

भरत ने राममहल में राजा के आसन पर इन खड़ाऊँ को स्थापित कर दिया तथा उनकी विधि पूर्वक स्थापनाकर सेवा पूजन करके स्वंय को सेवक बना अपने प्रभु राम की चाकरी करने लगे-

आयसु होइ त रहौं सनेमा। बोले मुनि तन पुलकि सपेमा॥

समुझब कहब करब तुम्ह जोई। धरम सारू जग होइहि सोई॥

सुनि सिख पाइ असीसबड़ि गनक बोलि दिनु साधि।

सिंघासन प्रभु पादुका बैठारे निरुपाधि ॥(तुलसीदास 2015:614)

इस प्रकार स्वयं नियम पूर्वक रहकर तथा सारे कष्ट सहकर अपने आराध्य राम की विधि पूर्वक सेवा-भक्ति करके भरत भक्तों में अतुलनीय बन गए।

राम की सेवा भक्ति, उनकी अर्चना हमें विभीषण के गृह में भी देखने को मिल जाता है। विभीषण भले ही रावण की लंका में रहते हों, परन्तु अपने गृह को मन्दिर बना कर उसमें राम की ही सेवा पूजा करते हैं तथा अपने आराध्य श्री राम में ही उनका प्रेम दृढ़ है। जब प्रभु श्री राम हनुमान को लंका में सीता की सुध लेने के लिए भेज देते हैं तभी वहाँ हनुमान के महल को देखकर आश्चर्यचकित हो जाते हैं। उस सुन्दरकाण्डप्रसंग का चित्रण तुलसीदास ने बहुत ही सुंदर ढंग से किया है । वे लिखते हैं कि हनुमान को एक सुंदर महल दिखा जिसमें भगवान का एक अलग मंदिर बना हुआ था । महल पूर्ण रूप से राम के धनुष बाणों की आकृति से अंकित था । चारों तरफ तुलसी के अनेकों नवीन वृक्ष से घिरा हुआ था ।

इस प्रकार से अर्चन-भक्ति-विधि का रूप विभीषण, भरत तथा ऋषि-मुनि आदि सबमें ही हमें देखने को मिल जाता है।

### 3.7.6 वंदन

वंदन के अंतर्गत भगवान की अर्चविग्रह की विधि पूर्वक पूजा करते हुए स्तुति करना आता है ।सम्पूर्ण वैदिक साहित्य,पुराण, भागवत ग्रंथ,गीता,रामायण आदि सभी महान ग्रन्थों मेंही श्री भगवान की वंदना,उनकी विधि पूर्वक पूजा और स्तुति की व्याख्या हजारों कवियों ने की है। श्री जयदयाल गोयंदका अपनी पुस्तक 'नवधा भक्ति' में वंदन भक्ति की व्याख्या करते हुए कहते हैं 'भगवान के नाम, स्वरूप आदि को साष्टांग प्रणाम करते हुए भगवत्प्रेम में मुग्ध होना ही वंदन भक्ति है ।(गोयंदका 2019:37)

> बृहत् प्रामाणिक हिन्दी कोश' में वंदन का अर्थ 'स्तुति' अथवा 'प्रणाम' ही बतलाया गया है ।
>
> (वर्मा 2014:845)

> श्रील प्रभुपाद 'श्रीमद्भागवतम्' लिखते हैं 'वंदनम् का अर्थ है नमस्कार करना या प्रार्थना करना ।
>
> (प्रभुपाद, श्रीमद्भागवतम्, सप्तम स्कंध 2018:206)

'रामचरितमानस' में भी इसकी पूर्णतः पुष्टि मिलती है। यहाँ भी कथा के प्रारंभ से ही शिवस्वयं स्तुति करते हुए अपने को परम रामभक्त स्वीकार करते हैं। वे भगवान श्री राम की वन्दना करते नहीं थकते। इस मानस का प्रत्येक पात्र ही अपने आराध्य राम की स्तुति तथा उनके गुणों की वंदना करता रहता है। सम्पूर्ण मानस में आए सभी ऋषि गण राम की स्तुति करके मुक्ति को लाभ करते हैं। कवि शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदास शिव द्वारा राम की स्तुति और भक्ति का वर्णन कुछ इस प्रकार करते हुए कहते हैं कि जो पुरुष प्रसिद्ध

हैं, प्रकाश के भण्डार हैं, रूपों में प्रकट हैं, जीव, माया और जगत सबके स्वामी हैं, वे ही रघुकुलमणि रामजी उनके स्वामी हैं। राम को सिर नवाते हुए शिव कहते हैं-

पुरुष प्रसिद्ध प्रकास निधि प्रगट परावर नाथ।

रघुकुलमनि मम स्वामि सोइ कहि सिवं नायउ माथ ॥(तुलसीदास 2015:129)

जब पार्वती को भ्रम हो जाता है कि उनके स्वामी राम को क्यों मस्तक नवा रहे हैं, तभी पार्वती को शिव यह बात कहते हैं और राम की वंदना करते हुए मस्तक नवाते हैं।

इतना ही नहीं शिव आगे अपने आराध्य राम की वंदना करते हुए कहते हैं कि राम की ही कृपा से मनुष्य के ये सारे भ्रम मीट जाते हैं। उन भगवान का आदि और अंत आज तक कोई नहीं जान पाया है। वेद भी उन भगवान की ही वंदना करते हुए गाते हैं-

जासु कृपाँ अस भ्रम मिटि जाई। गिरिजा सोइ कृपाल रघुराई॥

आदि अंत कोउ जासु न पावा। मति अनुमानि निगम अस गावा॥(तुलसीदास 2015:130)

शिव अपने अराध्य श्री राम की वन्दना करते हुए पार्वती से कहते हैं कि राम नाम के बल से ही काशी में मरते हुए प्राणी को देखकर मैं उसे मुक्त कर देता हूँ ।सबके अंतर को जानने वाले प्रभु राम ही जड़-चेतन के स्वामी हैं। अनिच्छा से लिए गए नाम के बल पर भी अनेकों जन्मों के पाप जल जाते हैं। फिर उस बात का क्या कहना कि जो मनुष्य आदर पूर्वक स्वेक्षा से प्रभु का नाम लेते हैं, उनके लिए तो यह मायामय संसार-समुद्र गाय के खुर से बने गड्ढे के समान बन जाता है। अर्थात वे आसानी से इसे पार कर लेते हैं। तुलसीदास लिखते हैं-

कासीं मरत जंतु अवलोकी। जासु नाम बल करऊँ बिसोकी॥

सोइ प्रभु मोर चराचर स्वामी। रघुबर सब उर अंतरजामी॥

बिबसहूँ जासु नाम नर कहहीं। जनम अनेक रचित अघ दहहीं॥

सादर सुमिरन जे नर करहीं। भव बारिधि गोपद इव तरहीं॥((तुलसीदास 2015:131)

इस प्रकार से यहाँ शिवजी अपने आराध्य की वंदना तथा स्तुति करके अपनी भक्त प्रकट करते हुए पार्वती को यह कथा कहते हैं।

### 3.7.7 दास्य

दास्य का स्थान भक्ति की नवों विधियों में महत्वपूर्ण है । दास्य भाव में अपने आराध्य की स्तुति करना भक्तों की महानता को भी दर्शाता है । गहन भक्ति भावना तथा अध्ययन के पश्चात् ही कोई यह समझ पाता है कि वह भगवान् का नित्य दास है । श्री जयदयाल गोयंदका 'नवधा भक्ति' में दास्य-भक्ति की व्याख्या करते हुए कहते हैं 'भगवान के गुण, तत्व, रहस्य आदि को जानकर श्रद्धा पूर्वक उनकी सेवा करना दास्य-भक्ति है।(गोयंदका 2019:41)

वैसे तो 'रामचरितमानस' का प्रत्येक पात्र अपने को श्री राम का नित्य दास ही कहता है। भरत, लक्ष्मण, सीता, हनुमान, अंगद आदि सभी पात्र निज को दास ही कहकर अपनी भक्ति की महिमा का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। राम के सभी दास एक से बढ़कर एक हैं । कोई-कोई राज्य-सुख प्राप्ति के पश्चात भी राम की चाकरी, उनकी दासता से वंचित नहीं होना चाहता। जब श्री राम के वन गमन के पश्चात भरत को राज्य सुख मिलता है, तब वे अपने भाग्य को कोसते हैं कि वे ऐसे अभागे क्यों हुए जिनके कारण ही सबको तथा उन्हें स्वयं भी श्री राम का विछोह हुआ। वे राज्यसुख को तिनके की तरह त्यागकर श्री राम की दासता स्वीकार करते हैं। जब समस्त मंत्री परिषद तथा गुरु वर्ग सिंहासन पर भरत को आसीन होने हेतु आग्रह करते हैं और ऋषिगण कहते हैं कि दशरथ ने राज्यपद उन्हें दिया है और पिता के वचन का पालन कर उन्हें आरूढ़ होना ही चाहिए-

रायं राजपदु तुम्ह कहूँ दीन्हा। पिता बचनु फुर चाहिअ कीन्हा॥(तुलसीदास 2015:487)

परंतु राजपद को प्राप्त होने पर भी अपने को धिक्कारते हुए भरत अपने भाग्य पर दुःख व्यक्त करते हैं। वे कहते हैं कि लक्ष्मण ने ही सही सेवा प्राप्त की है। वे तो स्वयं को अभागा ही कहते हैं जिन्हें राम पद-कमल सेवा का सुयोग नहीं मिल पाया । अतः वे अपने को श्रीराम का नौकर, सेवक आदि कहकर अपने हृदय के सेवा भाव को समाज के समक्ष प्रकट कर कहते हैं कि उनका कल्याण तो केवल रामजी की सेवा में ही है ।परंतु दुर्भाग्य ने कुटिल माता की कुटिलता के कारण उनसे छीन लिया । भरत का अनुमान यही है कि राम चरण-जुगल की सेवा के अलावा उनका अन्यत्र कल्याण नहीं है ।

अपने को राम का दास जानकार वे अपनी आन्तरिक भावना को व्यक्त करते हुए कहते हैं कि वे चाहे आज कितनें ही बुरे क्यों न हों, राम उन्हें अवश्य ही क्षमा करके अपना लेंगे। राम अत्यन्त ही सरल स्वभाव, कृपा और स्नेह के घर हैं। वे कभी शत्रु का भी अनिष्ट नहीं करते ।भरत बुरे होने पर भी उन्हीं के दास हैं । वे सबों से यही आशीर्वाद मांगते हैं कि राम लौटकर अयोध्या आ जाएँ-

सील सकुच सुठि सरल सुभाऊ। कृपा सनेह सदन रघुराऊ॥

अरिहुक अनभल कीन्ह न रामा। मैं सिसु सेवक जद्यपि बामा॥

तुम्ह पै पाँच मोर भल मानी। आयसु आसिष देहु सुबानी॥

जेहिं सुनि बिनय मोहि जनु जानी। आवहिं बहुरि रामु रजधानी॥(तुलसीदास 2015:495)

जहां एक ओर भरत की दास्य भक्ति भावना अत्यंत ही सराहनीय है वहीं अन्य भक्तों की भी अतुलनीय है। हनुमान को तो प्रभु श्री राम का परम सेवक जाना जाता है। जब एक बार हनुमान प्रभु श्री राम की आज्ञा से चौदह वर्ष वन में बीतने पर भरत का हाल देखने गए। तभी हनुमान अपना परिचय देते हुए भरत के त्याग की भी सराहना करते हैं। हनुमान अपने को भगवान का दास बताते हुए ऐसा कहते हैं कि वे दीनबंधु रघुनाथ के दास हैं ।हनुमान का यह वचन सुनकर भरत उनके गले लग गए-

दीनबंधु रघुपति कर किंकर। सुनत भरत भेंटेउ उठि सादर॥(तुलसीदास 2015:908)

हनुमान के प्रिय वचन सुनते ही भरत जैसे निर्जीव से सजीव हो उठें। उन्होंने प्रेम भरे स्वर में पूछा कि क्या इस दास भरत को प्रभु राम कभी याद भी करते हैं-

कहु कपि कबहूँ कृपाल गोसाईं। सुमिरहिं मोहि दास की नाईं ॥

निज दास ज्यों रघुबंसभूषन कबहूँ मम सुमिरन करयो।(तुलसीदास 2015:909)

इस प्रकार हनुमान और भरत की सेवा भावना सम्पूर्ण जगत में विख्यात है। जब सीता हरण के पश्चात समुद्र को लांघ कर माता सीता का पता लगाने दूत बनकर हनुमान अशोक वाटिका पहूँचे और सीता का हाल लिया तभी हनुमान की भक्ति भावन तथा सेवा परायणता देख कर सीता हनुमान को आशीर्वाद देती हैं ।

हनुमान के प्रेमयुक्त वचन सुनकर सीता के मन में विश्वास उतपन्न हो जाता है कि वे ही राम के दूत हैं-

कपि के बचन सप्रेमसुनि उपजा मन बिस्वास।

जाना मन क्रम बचन यह कृपासिंधु कर दास ॥(तुलसीदास 2015:727)

जयदयाल गोयंदका 'रामचरितमानस' में नवधा की व्याख्या करते हुए हनुमान, अंगद, लक्ष्मण आदि को राम का प्रिय दास बताते हुए लिखते हैं 'श्री लक्ष्मण-हनुमान, अंगद आदि दास्य-भक्ति के आदर्श उदाहरण हैं।(गोयंदका 2019:42)

### 3.7.8 सख्यम

अपने आराध्य को अपना परम मित्र मानकर उनकी सख्य भाव से भक्ति करना सख्यम् में आता है । अर्जुन चूंकि भगवान के परम प्रिय मित्र थे । अतः अर्जुन को भगवान कृष्ण अपना प्रिय मित्र मानकर उन्हें गीता रूपी परम ज्ञान देते हैं । 'श्रीमद्भगवद्गीता' के 18.64 श्लोक में भगवान स्वयं कहते हैं कि अर्जुन भगवान के प्रिय मित्र हैं, इसीलिएवे अर्जुन कोअपना परम आदेश, जो सर्वाधिक गुह्यज्ञान है, सुनने हेतु कहते हैं-

सर्वगुह्यतमं भूयः शृणु मे परमं वचः ।

इष्टोषि मे दृढमिति ततो वक्ष्यामि ते हितम् ।।

(प्रभुपाद, श्रीमद्भागवतगीता यथारूप 2011:552)

श्री जयदयाल गोयंदका सख्य भक्ति की व्याख्या करते हुए लिखते हैं 'भगवान के प्रभाव, तत्व, रहस्य को समझकर मित्र भाव से श्री भगवान से अनन्य प्रेम करना और उनकी लीला पर प्रसन्न रहना सख्य भक्ति है।(गोयंदका 2019:44)

'रामचरितमानस' में निषादराज गुह, सुग्रीव आदि की मित्रता में सख्यम भक्ति पद्धति का भी दर्शन होता है, निषादराज गुह श्री राम के सखा हैं। परन्तु मित्रता का नाता होते हुए भी निषादराज गुह अपने हृदय में अपने आराध्य श्री राम के चरणों में भक्ति भावना को निरन्तर सँजोए रखते हैं। निषाद राज जिस प्रकार अपने मित्र तथा स्वामी की सेवा में अपना सर्वस्व न्योछावर कर देते हैं ठीक उसी प्रकार प्रभु श्री राम भी मित्र गुह को अपने हृदय से लगाकर परम भक्ति प्रदान कर उसका मान जगत में सदा के लिए बढ़ा देते हैं। निषाद राज गुह की भक्ति सख्य भक्ति भावना का प्रबल उदाहरण है।

भक्त वत्सल भगवान श्री राम ने अपने सखा निषाद पर अनुग्रह कर उसे सेवा का मौका दिया। मित्र निषादराज गुह ने भी दोनों प्रकार से सेवक और मित्रता के कर्तव्यों का पालन करते हुए फल फूल आदि सभी भेंट देकर अपने गृह में रहने का अनुग्रह किया । परन्तु दीनों के नाथ उसके धन को नहीं केवल मन को ग्रहण करते हैं। जब भगवान ने गृह में रहने हेतुगुह की प्रार्थना नहीं स्वीकार की तब मित्र धर्म का पालन करने हेतु तथा अपने प्रभु की सेवा भक्ति लाभ हेतु निषाद गुह स्वंय भगवान के साथ चलने का, उनकी सेवा करने का अवसर विनय

और प्रेम पूर्वक माँगते हैं। गुह हाथ जोड़कर विनती करते हुए कहते हैं कि वे साथ चलकर रास्ता दिखाएंगें और वन में एक पर्णकुटी बनवाकर कुछ दिन चरणों की सेवा करके लौट आएंगें-

दीन बचन गुह कह कर जोरी। बिनय सुनहु रघुकुलमनि मोरी॥

नाथ साथ रहि पंथु देखाई। करि दिन चारि चरन सेवकाई॥

जेहिं बन जाइ रहब रघुराई। परनकुटी मैं करबि सुहाई॥

तब मोहि कह जसि देब रजाई । सोइ करिहऊँ रघुबीर दोहाई॥(तुलसीदास 2015:501)

निषादराज गुह के हृदय की भक्ति निश्चय ही सराहनीय है। वे राम नाम लेकर मृत्यु को भी गले लगाने में अपना ही सौभाग्य समझते हैं। वे कहते हैं कि साधुओं के समाज में जिसका स्थान नहीं और जो राम भक्तों की श्रेणी में नहीं है, वह पृथ्वी का भार बनकर केवल माता के यौवन का घाती ही है । एक उदाहरण दृष्टव्य है-

साधु समाज न जाकर लेखा। राम भगत महूँ जासु न रेखा॥

जायं जिअत जग सो महिभारू। जननी जौबन बिटप कुठारू॥(तुलसीदास 2015:902)

यही कारण है कि जब वनवास की अवधी बीतजाने पर राम लौटते हैं तभी अपनी मित्रता के प्रेम बन्धन का ध्यान कर निशादराज गुह के पास अति प्रेम सहित जाते हैं। निषादराज भगवान को पुनः आया जानकार आनन्द विभोर होकर दण्डवत प्रणाम करते हैं-

प्रभुहि सहित बिलोकि बैदेही। परेउ अवनि तन सुधि नहिं तेही॥(तुलसीदास 2015:903)

प्रभु ने ज्यों ही अपने परम मित्र तथा भक्त निषाद राज गुह को देखा त्यों हीं अपने हृदय से लगाकर उसे परम भक्ति का फल दिया। प्रभु और निषादराज की सख्य भक्ति का उदाहरण दृष्टव्य है-

सब भाँति अधम निषाद सो हरि भरत ज्यों उर लाइयो।(गोयंदका 2019:48)

जयदयाल गोयंदका 'रामचरितमानस' की व्याख्या करते हुए गुह की सख्य भक्ति को इन शब्दों में व्यक्त करते हैं 'भीलों का राजा गुह भी भगवान से सख्य करके संसार-सागर से तर गया ।(तुलसीदास 2015:686)

यही मित्रता तथा भक्ति का सुन्दर उदाहरण हमें सुग्रीव और राम मिलन प्रसंग में भी नजर आता है। जब राम प्राणप्रिय सीता की खोज में सुग्रीव के पास आए। उन्होंने अग्नी को साक्षी मानकर मित्रता कर ली। भगवान इतने दयालु हैं कि एक वानर को भी मित्र बनाकर उसे हृदय से लगा लेते हैं । सुग्रीव भी भगवान की सब प्रकार से सेवा भाव में अपना तन मन उत्सर्ग करने को तत्पर हो गए । वे राम को वचन देते हुए कहते हैं कि सीता माता की खोज में वे हर प्रकार से राम की सेवा करेंगें-

कह सुग्रीव सुनहु रघुबीरा। तजहु सोच मन आनहु धीरा॥

सब प्रकार करिहऊँ सेवकाई। जेहि बिधि मिलिहि जानकी आई ॥

(प्रभुपाद, श्रीमद्भागवतम्, सप्तम स्कंध 2018:207)

अतः इस प्रकार इन प्रसंगों में हमें सख्य भक्ति का भी सुन्दर दृष्टान्त देखने को मिल जाता है।

### 3.7.9 आत्मनिवेदन

आत्मनिवेदनम् में एक भक्त अपना सर्वस्व भगवान के श्री चरणों में अर्पित कर देता है । इस समर्पण में उसकी कोई भी इच्छा बाकी नहीं रहती । वह सब कुछ भगवान को अर्पित कर देता है । इस समर्पण का सबसे श्रेष्ठ उदाहरण बलि महाराज की भक्ति तथा समर्पण भावना है ।'श्रीमद्भागवतम्' के सातवें अध्याय में आत्मनिवेदन भक्ति की व्याख्या करते हुए श्रील प्रभुपाद कहते हैं कि 'आत्मनिवेदनम् का अर्थ होता है भगवान् श्री कृष्ण को प्रत्येक वस्तु अर्पित करना, जिसमें शरीर, मन, बुद्धि तथा अपने निकट में जो भी हो, वह सम्मिलित है ।(गोयंदका 2019:48)

श्री जयदयाल गोयंदका आत्मनिवेदन भक्ति की व्याख्या करते हुए लिखते हैं-

> परमात्मा के रहस्य को समझ कर अहंकार रहित होकर अपना तन-मन-धन-जन सहित अपने आपको कर्मों सहित श्रद्धा और प्रेम पूर्वक परमात्मा को समर्पण कर देना ही आत्मनिवेदन भक्ति है ।(तुलसीदास 2015:416)

राम जब वन को गए तभी वन मार्ग में शृंगवेरपुर नामक स्थान में उनके आने की सूचना पाते ही निषाद राज गुह ने भगवान के चरणकमल की वंदना करके अपना निवास स्थान तथा अपना सबकुछ समर्पित कर दिया। राम द्वारा निषाद राज की कुशलता पूछे जाने पर निषाद राज ने अपने हृदय की भावना को व्यक्त करते हुए कहा कि राम चरण युगल के दर्शन से ही उनका सब कुशल है । आज वे भाग्यवानों की श्रेणी में आ चुके । अपना घर, धन, परिवार आदि सबकुछ समर्पित कर वे राम की सेवा में लग गए-

> नाथ कुसल पद पंकज देखें। भयऊँभागभाजन जन लेखें ॥
>
> देव धरनि धनु धामु तुम्हारा। मैं जनु नीचु सहित परिवारा॥(तुलसीदास 2015:397)

इस प्रकार यहाँ हमें निषादराज गुह की आत्मनिवेदन श्रद्धा-भक्ति की अनुभूति होती है। यह आत्मनिवेदन भक्ति विधि हमें प्रत्येक पात्र में ही परिलक्षित हो जाती है। जटायु, वानरगण, कुम्भकर्ण, मारीच, सीता तथा रावण में भी देखने को मिल जाता है। सीता ने जब देखा कि राम वन जा रहे हैं तब उन्होंने तनिक भी नहीं सोचा कि वन बड़ा भयानक होता है। वहाँ किसी प्रकार से सुख भोग की कोई सामग्री उपलब्ध नहीं है। राजा दशरथ की पुत्रवधु तथा राजा जनक की पुत्री को संसार के सारे सुख उपलब्ध होते हुए भी उन्होंने राम के चरणों में सब कुछ न्योंछावर कर वन को प्रस्थान किया। सीता कुछ इस प्रकार से निवेदन करते हुए कहती हैं कि राम के बिना जगत में उनके लिए कहीं कुछ भी सुखदायी नहीं है। सीता कहती हैं कि बिना आत्मा के शरीर और

बिना जल की नदी की भांति वे भी राम के बिना व्यर्थ हैं। राम संग रहकर तथा उनके सुंदर मुखचन्द्र को देखकर वे समस्त सुख प्राप्त कर लेंगी,-

प्राननाथ तुम्ह बिनु जग माहीं। मो कहूँ सुखद कतहूँ कछु नाहीं॥

जिय बिनु देह नदी बिनु बारी। तैसिअ नाथ पुरुष बिनु नारी॥

नाथ सकल सुख साथ तुम्हारें। सरद बिमल बिधु बदनु निहारें॥(तुलसीदास 2015:401)

सीता के ये वचन, उनका त्याग तथा आत्म निवेदन भाव निश्चय ही सराहनीय तथा वंदनीय हैं।

जब लक्ष्मण ने यह बात सुनी कि राम वन को जा रहे हैं, उनका मन विचलित हो गया। वे भगवान के प्रेम में बंधे जलविहीन मछली की तरह तड़प उठे। लक्ष्मण को तो वनवास नहीं मिला था। परन्तु राम प्रेम और भक्ति जिसके हृदय में भरी हो वह क्या कभी भौतिक सुख, महल, राज्य, वस्त्र, आभूषण आदि अत्यंत तुच्छ वस्तुओं के लिए अपने आराध्य के प्रेम को, उनकी सेवा के परम आनन्द को त्याग देगा? वह निश्चित ही वन को जाएगा। लक्ष्मण प्रभु के चरणों को पकड़ कर आत्मनिवेदन करते हैं। लक्ष्मण व्याकुल हो उठते हैं। उनका शरीर काँप रहा है। प्रेम से अधीर होकर वे राम के चरण पकड़ कर निवेदन करते हैं-

समाचार जब लछिमन पाए। ब्याकुल बिलख बदन उठि धाए॥

कंप पुलक तन नयन सनीरा। गहे चरन अति प्रेम अधीरा॥(तुलसीदास 2015:403)

जब श्री राम ने लक्ष्मण से राज्य में रहकर माता-पिता, पत्नी तथा प्रजा की देखभाल कर सुख पूर्वक महल में रहने की बात कहीं तब लक्ष्मण दुःखी हो गए तथा आत्म निवेदन करने लगें। लक्ष्मण विनय पूर्वक कहने लगें कि वे प्रभु के स्नेह में पले बच्चे हैं। वे राम को छोड़कर गुरु, माता, पिता आदि किसी को भी नहीं जानते । लक्ष्मण कहते हैं कि जगत में उनके जो भी स्नेह के बंधन हैं वे सब प्रभु राम ही हैं-

मैं सिसु प्रभु सनेहँ प्रतिपाला। मंदरु मेरु कि लेहिं मराला॥

गुर पितु मातु न जानऊँ काहू। कहऊँ सुभाउ नाथ पतिआहू॥

जहँ लगि जगत सनेह सगाई। प्रीति प्रतीति निगम निजु गाई॥

मोरें सबइ एक तुम्ह स्वामी। दीनबंधु उर अंतरजामी॥(तुलसीदास 2015:896)

रावण को रण में जीतकर राम ने सम्पूर्ण राज्य विभीषण को दे दिया। परन्तु राम प्रेम की ज्योति जिनके हृदय में प्रेमपूर्वक जलती हो,उन्हें क्या विषय-सुख मोह पाश में बांधे रख सकता है। विभीषण ने सारी सम्पत्ति तथा राज्य को श्री राम के चरणों में समर्पित कर आत्मनिवेदन किया । विभीषण अपने प्रभु राम से साथ ले चलने का आग्रह करने लगे। विभीषण निवेदन करते हुए कहते हैं कि उन दीन, पापी, बुद्धिहीन और जातिहीन पर प्रभु ने बहुत प्रकार से कृपा की है । खजाना, महल और सम्पत्ति का निरीक्षण कर प्रसन्नतापूर्वक वे वानरों को दे दें । विभीषण राम से निवेदन करते हुए कहते हैं कि प्रभु राम उन्हें सब प्रकार से अपना दास बना लें । उन्हें भी अपने साथ लेकर अयोध्यापुरी को पधारें । विभिषण के कोमल वचन सुनते ही राम के नेत्र सजल हो गए-

दीन मलीन हीन मति जाती। मो पर कृपा कीन्हि बहु भाँती॥

अब जन गृह पुनीत प्रभु कीजे। मज्जनु करिअ समर श्रम छीजे॥

देखि कोस मंदिर संपदा। देहु कृपाल कपिन्ह कहूँ मुदा॥

सब बिधि नाथ मोहि अपनाइअ। पुनि मोहि सहित अवधपुर जाइअ॥

सुनत बचन मृदु दीनदयाला। सजल भए द्वौ नयन बिसाला॥(तुलसीदास 2015:897)

## 3.8 निष्कर्ष

इस प्रकार से सम्पूर्ण काव्य भक्ति काव्य है तथा इस गुण रूपी मानस का प्रत्येक पात्र रामभक्ति की एक आदर्श युक्त मिसाल देकर आने वाले युग के लिए पथ प्रदर्शन का कार्य करता हैं। भक्ति की सारी विधियाँ यहाँ

प्रायः सभी पात्रों में अनुकूल बन पड़ी हैं। मानस का प्रत्येक पात्र अपने हृदय में राम को प्राण सदृश बसाए हुए आनन्द से परिपूर्ण हैं।